सतनामी आंदोलन

महान सतनामी आंदोलन (1820 ईस्वी): एक ऐतिहासिक क्रांति

सतनामी आंदोलन 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध (विशेषकर 1820-1830 के मध्य) में गुरु घासीदास के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ की धरती पर उपजा एक बहुआयामी विद्रोह था। यह केवल एक धार्मिक सुधार आंदोलन नहीं था, बल्कि जातिवाद, सामंतवाद, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और लैंगिक उत्पीड़न के विरुद्ध एक सशक्त प्रजातांत्रिक क्रांति थी।

यह लेख कुमार लहरे द्वारा संकलित विभिन्न ऐतिहासिक शोधों और पुस्तकों (डॉ. हीरालाल शुक्ला, साहेब सर्वोत्तम स्वरूप, डॉ. शंकरलाल टोडर आदि) पर आधारित है, जो 1820 के दशक में मध्य भारत में हुए 'महान सतनामी आंदोलन' के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है।

Satnami Movement सतनामी आंदोलन :-

01. अपने भूमि संपत्ति पर कब्जे का आंदोलन :-

सन 1741 ईसवी में छत्तीसगढ़ पर मराठा सेनापति भास्कर पंत ने आक्रमण कर दिया. बहुत जल्दी ही पूरे छत्तीसगढ़ में आतंक का साम्राज्य स्थापित कर लिया. विरोध को बर्बरता से कुचल दिया गया. पिछले लगभग सात शताब्दियों से रतनपुर में चले आ रहे हैहैयवंशी कलचुरी सत्ता के साथ ही स्थानीय आदिवासियों के स्वतंत्र शासन सत्ता को खत्म कर दिया गया. इसी के साथ ही यहां के स्थानीय निवासियों के भूमि व संपत्तियों पर मराठा पेशवा समर्थक ब्राम्हणो, सामंतों, जमींदारों, सैनिकों और उनके स्थानीय चापलूसों और सहयोगियों ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से कब्जा करना शुरू कर दिया. धीरे-धीरे यहां के भूमि स्वामी भूदास बनते गए और एक समय ऐसा भी आया कि अधिकांश लोग भूमिहीन हो गए.

डॉ. हीरालाल शुक्ला [1995: 127] के अनुसार रायपुर क्षेत्र में सबसे अधिक भू स्वामित्व ब्राह्मणों के पास था. वे 606 गांव के मालगुजार थे इनमें से 185 गांव के मालगुजार मराठा ब्राह्मण थे, जो भोंसला काल में नागपुर से आए थे. शेष ब्राह्मण समुदाय परंपरा यह मानता था कि हैहैयवंशी कल्याण साय के समय में उनके पूर्वज 16वीं शताब्दी में कन्नौज से आए थे. इन छत्तीसगढ़ी ब्राह्मणों को उत्तर भारत के ब्राह्मण भ्रष्ट मानते थे. ये अच्छे मालगुजार साबित हुए तथा रैयत से इनके संबंध सौहार्दपूर्ण थे. [ग्रांट 1870: 415] मराठा ब्राह्मण तथा अन्य मराठा मालगुजार भोंसला काल में छत्तीसगढ़ आए थे और स्थानीय निवासियों को बेदखल कर यहां के मालगुजार बन गए थे.[ग्रांट तदेव]

रायपुर क्षेत्र के समान ही बिलासपुर क्षेत्र में भी लगभग एक चौथाई गांव के मालगुजार ब्राहमण थे और उनमें से आधे गांव मराठा ब्राहमणों के स्वामित्व में थे. इन मराठा ब्राहमणों ने बिलासपुर अंचल में भी स्थानीय निवासियों को बेदखल किया था.[ग्रांट तदैव]

उपरोक्त तरीकों से यहां के स्थानीय लोगों के जमीनों पर कब्जा कर भूदास बना दिया गया. लोगों का आर्थिक स्थिति बहुत ज्यादा खराब हो गया था और धीरे-धीरे गुलामी की बेड़ियों में जकड़ लिए गए.

ब्रिटिश भारत में कई सामंती - साम्राज्यवादी गठजोड़ के खिलाफ आंदोलन का जिक्र किया गया है. जैसे जब डी ही जुमला की कचहरी में दिनाजपुर की रैयत ने देवी सिंहा के विरुद्ध बगावत के दौरान आक्रमण किया तो वहां के सभी कागजात भी रैयत अपने साथ ले गई. [महाराजा देवी सिन्हा 582] और यही गति उन दस्तावेजों की भी हुई जो उनके जमीदारों के पास थे.... कोलकाता गजट में यह भी उल्लेख मिलता है कि टीटू मीर के द्वारा संचालित बारासात आंदोलन के दरमियान जब नील के कारखानों पर विद्रोहियों ने छापा मारा तो उन्होंने वहां के फर्नीचर को ही नहीं तोड़ा अपितु अपने अपने ऋण पत्रों को भी विनष्ट कर दिया था. [दास गुप्ता 1959: 686] इसी प्रकार पुना और अहमदाबाद में भी कुनबी किसानों ने 1875 के विद्रोह में लिखित सामग्री पर ही धावा बोल दिया था.... 1857 के विद्रोह में उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले की जनता ने किसी भी प्रकार की लिखित सामग्री को भी नहीं छोड़ा... इसी प्रकार मुजफ्फरपुर में भी दीवानी फौजदारी तथा जिला कलेक्टर की सामग्री को भी 14 मई 1857 को जलाकर राख कर दिया गया था.[रिजवी 1960:111:113 :80 -1]

... किंतु सतनामी आंदोलन उक्त सभी आंदोलनों से इस रूप में एक कदम आगे था. कि इसने पत्र को फाड़ा ही नहीं अपितु उन गांवों का मालगुजार बन गया जहां से दास की स्थिति में रखा जा रहा था.

"हिल्टन [130] ने जर्मनी के किसान आंदोलन के संदर्भ में विवेचित किया है.वहां किसानों के हमले के लक्ष्य "नाईट" [राजराणक] थे. वह एक प्रकार का "चयनात्मक" आक्रमण था, और दुर्ग में रहने वाली महिलाओं को किसी प्रकार नहीं छेड़ा गया. यही बात छत्तीसगढ़ में सतनामियों के बारे में लागू होती है."

इस प्रकार सतनामी आंदोलन और जर्मनी के किसान आंदोलन में यह समानता है. "यहां के सतनामी आंदोलन में सतनामियों ने मालगुजारो की ही संपत्ति लूटी किंतु आम जनता का उन्होंने कोई नुकसान नहीं किया." **[डॉ हीरालाल शुक्ला, लेखक, गुरु घासीदास संघर्ष, समन्वय और सिद्धांत, 1995: 127]**

" ...1820 से घासीदास के नेतृत्व में महान सतनाम आंदोलन प्रारंभ हुआ.जिसे सोनाखान के राजा रामराय और वीर नारायण सिंह के साथ आदिवासियों ने आगे बढ़ाया हजारों गांवों में लोगों ने अपनी खोई हुई भूमि व संपत्तियों को मराठों से छीनकर अपने स्वामित्व में लिया. ..." **[उत्तम कुमार, लेखक व संपादक, दक्षिण कौशल, जुलाई- सितंबर, 2018 पेज 21]**

"... सन 1820 ईस्वी से गुरु घासीदास जी के नेतृत्व में महान सतनामी आंदोलन प्रारंभ हुआ जिसे सोनाखान के राजा रामराय और आदिवासियों ने सहयोग प्रदान किया.यह आंदोलन काफी तेजी से बढ़ा. इस आंदोलन ने जातिवादी सामंती तत्वों को खदेड़ना शुरू कर दिया. ..."

हजारों गांव में लोगों ने अपनी खोई हुई भूमि व संपत्तियों पर मराठों से छीन कर कब्जा कर लिया. ...' **[गुरु बालकदास शहादत दिवस, मार्च 2018, पेज 11]**

" ...पेशवाशाही मराठा सामंतों, सैनिकों व उनके स्थानिय चापलूसों और समर्थकों द्वारा लूटे गए अपने जमीनों- संपत्तियों पर दोबारा अधिकार कर भूदास प्रथा को खत्म किया गया. सामंतों को टैक्स देना बंद कर दिया गया. सामूहिक खेती किया जाने लगा. सामंतों और उनके सैनिकों को सतनामी आंदोलनकारियों ने अपने प्रभाव वाले इलाकों - क्षेत्रों से भगा दिया...." **[मानवाधिकार स्वाभिमान दिवस, अप्रैल 2018, पेज 16]**

साहेब सर्वोत्तम स्वरुप [2016:173,174,175] के अनुसार सदियों की गुलामी व दासता की बेड़ी से जकड़े हुए समाज में जब गुलामी और दासता का ज्ञान कराने वाला कोई महापुरूष हो गया तो निश्चित ही उस बेड़ी को तोड़ने में देर नहीं लगती । भारत के अनेक भू भागों में बसे शुद्र (अन्य पिछड़ा वर्ग , वंचित आदिवासी) समाज के लोग हैं. किन्तु छत्तीसगढ़ के शोषितों में स्वाभिमान का प्राण फूंकने वाले गुरू घासीदास साहेब पहले महापुरूष हुये । इनके बाद महाराष्ट्र में माली (मरार) परिवार में जन्में महात्मा ज्योतिराव फूले पैदा हुये । जो शिक्षा की ज्योति जलाने वाले देश के प्रथम महापुरुष हुए कहा जाता है ।

ऐसे मध्य युगीन काल में संत परम्परा के प्रणेता सदगुरू कबीर के बाद गुरू रविदास , गुरू नानक , दादू , दरिया , घीसा , पल्टू , पीपा , सेन , घन्ना , तुकाराम , आदि सभी संतों ने अपनी - अपनी सामर्थ्यतानुसार देश के मानव समाज की सुषुप्त चेतना को जगाने में सहयोग किया है समाजिक कांति लाने में । फिर भी

गुरू घासीदास साहेब की क्रांति ने तो इतिहास का नक्शा ही बदल कर रख दिया । यद्यपि इतिहासकारों ने इतिहास के पन्नों पर उल्लेख करना ही छोड़ दिया है । बाबा जी की वैचारिक क्रांति के फलस्वरूप समाज में जो परिवर्तन आया है वह सचमुच में दांतों तले उंगली दबाने जैसा है । चन्द समय में इतना बदहाल जीवन में बदलाव आया है वह भी विलक्षण हैं । जिससे अंदाज लगाया जा सकता है कि कैसे अनेक गांव में काफी खेती बाड़ी मठ मकान के भूमि स्वामी के मालिक हो गये । रोटी कपड़ा और मकान का सपना देखने वाले समाज की जो दुर्दशा थी वह किसी से छिपी नहीं थी । कठिन परिश्रम के बाद ना तो ठीक से भोजन मिलता था और ना ही ठीक से कपड़ा मिलता था । आवासीय सुविधा तो ठीक से थी ही नहीं । लगभग अधिकतर लोगों की फूश की झोपड़ी होती थी । सर्वहारा वर्ग जीवन के सभी दिशाओं से हार चुके थे । शोषको ने 80 - 90 प्रतिशत लोगों को गन्ने के छोइहे की तरह चूस कर रख दिया था । सामंतो और जमींदारों द्वारा मजदूरों को ठीक से मेहनताना नहीं दिया जाता था और दिया भी जाता तो एक डेढ़ किलो धान ही दिया जाता था जिसे स्वयं कमाने वाला ही यदि धान के भुसा सहित भोजन बनाता तो पेट भरना मुश्किल था । फिर पत्नी बाल बच्चे बुढ़े मां बाप क्या खाते ? क्या करें कुछ कुछ ऊट के मुंह में जीरा के समान भोजन लेकर पेट मे कपड़े बांधकर सो जाते थे ।

आज के आधुनिक युग के मुताबिक उस जमाने में गरीबों को स्वप्न होता था कि कब भर पेट दाल भात खाने को मिले जिसे पुरानी कहावत में " ररुहा सपनावय दार भात " प्रचलित थी । बदन में ठीक से ढंकने के लिए कपड़ों के लिए तरसना पड़ता था । गर्मी हो या बरसात तथा सर्दी आदि से बचने के लिए पर्याप्त कपड़े नहीं मिलते थे और नही सिर छुपाने के लिए अच्छे से क्या साधारण मकान भी नहीं होता था फुस की झोपड़ी में सारा परिवार का समय कट जाता था । ठण्ड के दिनों में ओढ़ने बिछौने के अभाव में कितने गरीबों की अकड़ने से ईह लीला समाप्त हो जाती थी । ऐसे ही गर्मी के दिनों में लू के थपेड़ों से अनेकों में मौत हो जाती थी । और बरसात की ऋतु में छप्पर से चूहते पानी में गुजा बसर करना होता था । इन सारे दुखों से निजात दिलाने वाले मसीहा की प्रतिक्षा में आधुनिक काल का पूर्वार्ध बाट जोह रहा था

ऐसे संक्रमण काल का तकाजा समाप्त हुआ और छत्तीसगढ़ में जाज्वल्यमान नक्षत्र का उदय हुआ । जिन्होने अपने सतनाम आंदोलन के माध्यम से छत्तीसगढ़ के शासकों व शोषकों के खिलाफ जागृति पैदा किया जिससे बड़े जोश खरोश के साथ समाज के लोग विरोधी स्वर में खड़े हो गये । कहा जाता है कि छत्तीसगढ़ के सभी किसानो की जमीन का लगान शासक और शोषक वर्ग चार गुणा वसूल कर अपने तिजौरी भर लेते थे । और लगान नहीं पटाने पर उसकी जमीन बेदखल कर अपने नाम पर बलपूर्वक कर लेते थे । उसी राख के भीतर छिपी आग को गुरूबाबा ने कुरेद कर बाहर निकाल दिया । जिससे उतेजित समाज जुल्म ज्यादती करने वाले सामंतों तथा मालगुजारो पर टूट पड़े । उक्त सारे फर्जी बनाये गये दस्तावेजों तथा अपने नाम पर की गई जमीन और जागीरदारी छीन लिये । इसके सम्बध में मेरे पूज्य गुरुदेव श्री सेवक साहेब (1885 - 1975) के अनुसार 900 माल गुजार हो गये । जो डॉ हीरालाल शुक्ला और अंग्रेज लेखक ग्राण्ट के मुताबिक सही ठहरता है. **[साहेब सर्वोत्तम स्वरुप, लेखक व प्रकाशक, गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, 2016:173,174 व175]**

लोगों ने अपने भूमि संपत्तियों को वापस लेने के लिए मराठा जमीदारों, सामंतों, सैनिकों और उनके समर्थकों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया. हजारों गांवों [जिस पर वे या उसके पूर्वज काबिज थे, जिसे मराठों ने बलपूर्वक कब्जा कर लिया था] पर हमला कर दिया और अपनी जमीनों को मुक्त करा लिए. मराठा जमीदार,सैनिक और उसके समर्थकों को गांव से भाग कर अपनी जान बचानी पड़ी.

[ब्रिटिश अभिलेखों में ऐसे गांव जहां लोगों ने अपनी जमीनों पर कब्जा किया उनकी संख्या 362 बताई गई है. ब्रिटिश अभिलेखों में दर्ज किए गए 362 गांव उसी स्थिति में है, जब सन 1860 ईस्वी में गुरु बालकदास जी की हत्या कर दिया गया और उसके बाद सतनामियों की भूमि संपत्तियों पर दोबारा बलपूर्वक कब्जा किया गया. विरोध करने पर मारपीट, हत्या व अन्य तरीके से प्रताड़ित किया गया. लोग गांव छोड़ने पर मजबूर हुए. जहां लोग लड़कर या चापलूसी कर अपनी जमीन बचा पाए ऐसे गांव की संख्या 362 बताई गई है, जहां सतनामियों का कब्जा था.]

इस प्रकार इस आंदोलन के मुख्य विशेषताओं में से एक विशेषता अपने छीने हुए भूमि पर अधिकार प्रमुख था.सतनामी आंदोलन के इस प्रकृति के कारण [ब्रिक्स 1920:223] ने सतनामी आंदोलन को एक आर्थिक संघर्ष/ इकोनॉमिक स्ट्रगल [Economic Struggle] माना है.

02. लगान व टैक्स देना बंद कर दिया गया :-

मेजर एग्न्यू ने छत्तीसगढ़ सुबा या प्रांत पर 23 दिसंबर 1820 ईस्वी को एक प्रतिवेदन लिखा जिसमें यहां के स्थिति के बारे में पता चलता है कि जनता को कैसे मराठा सामंत जमीदार और उसके सैनिक खुलेआम लूट रहे थे इसका कुछ झलक जिस प्रकार है.

आलोक शुक्ला के अनुसार बिंबाजी भोसले की मृत्यु के बाद व्यंकोजी राजा बने तो वे छत्तीसगढ़ के शासन को सूबेदार के माध्यम से चलाने लगे इसी तरह छत्तीसगढ़ में सूबेदार की परंपरा शुरू हुई इसे सुबा सरकार भी कहते हैं रतनपुर सूबेदार का मुख्यालय था और पूरे क्षेत्र का शासन यही से संचालित होता था यह प्रणाली 1787 से 1818 ईस्वी तक चलती रही ...

छत्तीसगढ़ में सुबा सरकार स्थापित कर मराठा शासक उसके माध्यम से धन वसूल कर नागपुर भेजा करते थे सुबा सरकार छत्तीसगढ़ के हित के लिए नहीं थी मराठा शासक किसानों को सरकार पर आश्रित रखते थे पैसों के स्थान पर कर के रूप में किसानों से अनाज लिया जाता था अनाज की बिक्री की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी छत्तीसगढ़ का अनाज नागपुर भेजा जाता था यातायात की कठिनाइयों के कारण बहुत ज्यादा खर्च होता था परंतु किसान जब अपने गांव में अनाज बेचते थे तो उन्हें उचित मूल्य नहीं मिलता था.

व्यंकोजी घोंसला के बाद रघुजी द्वितीय अप्पा साहब नागपुर के राजा बने उनकी मूल प्रवृत्ति सैनिक की थी वह हमेशा युद्धों में फंसे रहते थे जनता के बारे में सोचने वक्त चाहिए उनके पास नहीं था. छत्तीसगढ़ के ज्यादातर लोगों की जीविका का आधार कृषि था प्रमुख उपज चावल गेहूं चना कोदो दाल थी अनाज की बिक्री की कोई सही व्यवस्था ना होने के कारण किसानों को बहुत कष्ट सहने पड़ते थे मजबूरी के कारण किसानों को अनाज एक जगह से दूसरी जगह ले जाना पड़ता था अनेक कृषक जल्दी ही एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चले जाते थे इस कारण कृषि भूमि का समुचित विकास नहीं हो सका साहूकारों से ऋण लेने के लिए किसान को अपनी जायदाद गिरवी रखनी पड़ती थी और कई बार उनकी जमीन छीनी जाती थी.

[सुबा प्रथा की समाज व्यवस्था कर प्रणाली और अर्थव्यवस्था]

बिंबा जी जी की मृत्यु के बाद छत्तीसगढ़ में भोंसला शासन के वायसराय के रूप में व्यंकोजी ने छत्तीसगढ़ में वायसराय का पद संभाला. परंतु संपूर्ण शासन का भार सूबेदार ऊपर छोड़ दिया. खुद नागपुर की राजनीति में उलझे रहे. व्यंकोजी को छत्तीसगढ़ मैं सुबा शासन का संस्थापक माना जाता है. यह सूबेदार निजी स्वार्थों व धन संचय की भावना से प्रभावित थे. परिणाम स्वरूप छत्तीसगढ़ में आतंक अराजकता अनिश्चितता एवं अव्यवस्था की स्थिति बनी रही. इस शासन के दौरान छत्तीसगढ़ के अनेक गांव वीरान हो गए. लोग कठिनाइयों के शिकार बनते रहे. कृषि की दशा दयनीय हो गई एवं सन 1818 तक यहां के राजस्व में तीन लाख से अधिक वृद्धि ना हो सकी. जबकि सुबा शासन के पूर्व राजस्व की लगभग साढे छः लाख रुपए था.

प्रशासनिक अनुभव हिनता के कारण सुबेदार के दफ्तरों की दशा अत्यंत दोषपूर्ण अपूर्ण और अव्यवस्थित ढंग से खर्च करने के लिए स्वतंत्र थे. उनके स्थायित्व का प्रश्न अनिश्चित होने के कारण उनके हृदय में जनहित की भावना नहीं रहता था. सुबा शासन के अंतर्गत छत्तीसगढ़ में केवल पीड़ा आतंक और लूट का ही बोलबाला रहा. संघर्ष में लीन मराठा शासकों की उपेक्षा का शिकार छत्तीसगढ़ को होना पड़ा. सन 1818 में जब सुबेदारी शासन का अंत हुआ तब इस क्षेत्र की जनता ने राहत की सांस ली. विट्ठल ने राजस्व व्यवस्था में परगना पद्धति की शुरुआत की. छत्तीसगढ़ में परगनों की संख्या 27 थी. संपूर्ण छत्तीसगढ़ का शासन दो भागों में विभाजित किया गया.

1. खालसा क्षेत्र
2. जमीदारी क्षेत्र

खालसा पर उन्होंने प्रत्यक्ष शासन का अधिकार रखा और जमीदारी क्षेत्र को जमीदारों के स्वतंत्र शासन में रखा. जमीदार मराठों द्वारा निर्धारित राशि नियमित एवं निश्चित रूप से शासन को अदा करते थे. मराठी लगान वसूली के तरीके भूमि नाप एवं किसानों और गौंटियों के बीच संबंध मे कोई नया नियम लागू नहीं किया गया. इनके द्वारा शासन में आने वाले परिवर्तन का मात्र लेखा-जोखा और राजस्व की वसूली को नियमित बनाना था. मराठों ने सन 1790 ईस्वी में ही राजस्व के क्षेत्र में कुछ परिवर्तन करने का प्रयास किया था, लेकिन वे इसे पूरी तरह से वैज्ञानिक ना बना सके. भूमि कर का निर्धारण का काम ग्राम स्तर पर होता था. इस नियम में नागपुर शासन के अनुकूल समय समय पर परिवर्तन होते रहते थे. भूमि की नाप का आधार किसानों के हलों की संख्या थी. कर के निर्धारण का कार्य गौंटिया और किसानों के मध्य आपसी समझौते के आधार पर किया जाता था. जमीन संबंधी कोई अभिलेख नहीं रखा जाता था. प्रत्येक परगने का कर निर्धारण पूर्व प्रचलित परंपरा और क्षेत्र की समकालीन परिस्थितियों को ध्यान में रखकर किया जाता था. कर वसूली नागपुर से प्राप्त निर्देशानुसार विगत वर्ष की वसूली के आधार पर की जाती थी. राजस्व में बराबर वृद्धि करते रहने की आम परंपरा थी.

संपूर्ण प्रदेश में राजस्व की वसूली में लूट सी मची हुई थी. कर वसूली के लिए ना कोई सामान्य सिद्धांत और न कोई निश्चित नियम. फसलीय वर्ष का प्रारंभ प्रतिवर्ष जून से होता था. उस समय सूबेदार और कमाविसदार क्षेत्रीय किसानों को अधिक से अधिक तादाद में जमीन को जोत के अंतर्गत लाने के लिए प्रोत्साहित करते थे. भूमि वितरण के संबंध में गांव का गौंटिया किसानों की सामूहिक शिकायतें सुनकर के उनके संतोष के अनुसार भूमि का वितरण करता था. बोनी समाप्त होने पर कमाविसदार क्षेत्रीय किसानों से विगत बकाया राशि की वसूली के तगादे भी करता था. अगस्त के अंत तक सूबेदार सभी कमाविसदारों को कुल राजस्व की राशि का एक तिहाई वसूल कर उसे अक्टूबर तक खजाने में जमा कराने का आदेश देता था. वह उसे पिछला बकाया वसूल करने की भी आज्ञा देता था..

भू राजस्व के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के कर थे.

1. टिकोली: जमीदारों द्वारा दी जाने वाली निश्चित राशि थी.
2. सादर: आयात निर्यात कर था.
3. कलाली: यह आबकारी कर था. जो मादक द्रव्यों पर लिया जाता था.
4. पंडरी: यह गैर कृषि कार्य करने वालों जैसे बढ़ई, लोहार आदि से लिया जाता था, और आय का 10% था.
5. सेवई: अनेक छोटे अस्थाई करो का सम्मिलित नाम सेवई था 6. जमीदारी टैक्स: आयातित अनाज पर प्रति गाड़ी तीन पायली लिया जाता था.

[मराठा कालीन छत्तीसगढ़ में भू राजस्व व्यवस्था]

[आलोक शुक्ला, छत्तीसगढ़ में मराठा राज]

डॉ हीरालाल शुक्ला [1995:19, 20, 21] के अनुसार उक्त अवधि के सभी रेवेन्यू रिपोर्ट इस विवरण से भरे पड़े हैं कि मराठा कर संग्राहकों ने किस क्रूरता और अमानवीय ढंग से धीरे-धीरे आम जनता को चूस लिया था. धन वसूलने की प्रक्रिया में बाधक बनने वाली संस्थाओं की सफाई कर दी गई थी.

ग्रामों की स्थापित संगठनात्मक को नेस्तनाबूद कर दिया गया था. गोंडवाना की सामंती व्यवस्था पर अध्यारोपण मंडलाधिशों की संगठन क्षमता को नकार दिया गया था. छत्तीसगढ़ में प्रचलित कर्तव्य और अधिकार की संरक्षक व्यवस्था के स्थान पर नीलामी की व्यवस्था का प्रत्यारोपण हुआ. गांवों को ताक में रख दिया और यदि कोई भी ग्रामीण वर्षभर सुरक्षित रहता तो वह अपने को सौभाग्यशाली मानता था. बरसात में और आशा से गुजरते हुए जब वह अपनी लहराती हुई फसल की सुरक्षा में तत्पर होता तो एकाएक लुटेरों का एक दल आता और उस खड़ी हुई फसल को काट कर ले जाता. उसके सारे परिश्रम पर पानी फिर जाता. सीमांत अंचलों में किसी भी दिन होल्कर की पिंडारी सेना आती और पूरे छत्तीसगढ़ पर झाड़ू फेर देती. फिर शायद सिंधिया के पिंडारी दल का अभियान होता और बची खुची संपत्ति को लूट कर चले जाते. निराशा में कभी-कभी ये लुटेरे अपने बैलों और घोड़ों को चरने के लिए फसलों पर छोड़ देते. संग्रहित जल धाराओं को अपने हाथियों के पैरों से ठोकर मरवा देते और यदि जनता विरोध करती तो उसे जीवित जला देते. नियमित आक्रमणों तथा शांति के मध्य मराठों और अंग्रेजों की सेनाएं लूट का क्रम जारी रखती थी. अभागी जनता ने अपनी रक्षा के सारे प्रयास पिंडारी दलों के सामने बेमानी थे. ये पिंडारी दल जब किसी सेना को आते हुए देखते थे तो वनों के अदृश्य स्थानों में छिप जाते थे. इनकी देखा देखी सभी स्थानों पर ऐसे लोगों के दल बन गए जो लूटपाट को अपनी आजीविका बना चुके थे. जो परिवार पिंडारियों की नजरों से बच जाता उन पर इन दलों की पैनी निगाह होती थी. ..." "... गुरु घासीदास ने प्रतिक्रिया स्वरूप अपने अनुयायियों से इनसे लोहा लेने के लिए प्रेरित किया था. "विषस्य विषमौसधम" की स्थिति बन रही थी. पिंडारिओ और लुटेरों के बाद आंग्ल मराठा सरकारें थी जो बहाने से लोगों की जमीन को नीलाम करवा देती थी.

छत्तीसगढ़ के विविध क्षेत्र बड़े किसानों को या तो निश्चित दर पर बेच दिए जाते थे अथवा फिर उन्हें मराठा सैनिकों को बेच दिया जाता था. यह बड़े किसान या सैनिक करों की वसूली से ज्यादती भी भी करते थे क्योंकि स्थानीय जनता से इनका कोई लगाव नहीं होता था. अनुभवों से सीख लेकर आगे चलकर यहां के किसानों ने गरीबी का बाना पहन लिया था अपने गोदामों को यह छिपा देते थे कुछ ने खेती करना बंद कर दिया था. किंतु आगे चलकर दोनों ही दैनिय स्थिति में पहुंच गए. व्यावहारिक तौर पर उनके पास एक ही चुनाव था या तो वे खेती करें या भूखों मर जाएं. यदि वे खेती करते तो मालगुजार अपने गुप्तचरो से मालूम कर लेते थे कि इजारा देने की स्थिति में कौन है.[स्लीमन पैरा 42] और तब शुरू हो जाती थी बकाया राशि की वसूली.

छत्तीसगढ़ के मालगुजार ने मराठा प्रशासन से सांठगांठ करके यहां की निर्धन जनता पर करों का बोझ लाद दिया था. इनमें से कुछ उल्लेखित कर इस प्रकार थे.

1. कृषि से असंबद्ध शुद्रो पर मराठा शासन ने पंदरी कर लगाया था. [जेंकिन्स 14]
2. गुनहगारी कर: यह कर परस्त्री गमन तथा कुमारीगमन पर दंड कर के रूप में सुबेदारी प्रशासन ने लगाया था. इस कर के माध्यम से मराठा शासन को प्रतिवर्ष ₹25000 की आय होती थी. इन करो को कमाविसदार इकट्ठा करते थे.[एग्न्यू 1820]
3. चूड़ी पहरावन: विधवा के पुनर्विवाह पर लगने वाला कर. [एग्न्यू 1820]
4. सावन: पुनर्विवाह के बिना विधवा को अपने माता-पिता के घर में रहने की अनुमति का कर.[एग्न्यू 1820]
5. पैठू: विवाह टूट जाने पर या स्वैच्छा से किसी की रखैल बन जाने पर कर. [एग्न्यू 1820]
6. भात खोवाई: जाति बहिष्कृत लोगों को पुनः जाति के अंतर्गत मिलाए जाने पर कर [एग्न्यू 1820]
7. चौथी: अनधिकृत रूप से अर्जित संपत्ति का एक चौथाई भाग राजसात करना. [एग्न्यू 1820]
8. घाटगारा: नदी पार करने पर लिया जाने वाला कर. [एग्न्यू 1820]

9. जद्दीद टीका: गांव के पटेल या गौंटिया बनने पर सरकार को दिया जाने वाला नजराना. [एग्न्यू1820]
10. जुआ: जुआ खेलने वालों से प्रति व्यक्ति ₹1 का कर. [एग्न्यू 1820]
11. कुर्की: सरकार से अपने अनुकूल न्याय पाने के लिए इच्छुक लोगों से लिया जाने वाला कर. [एग्न्यू 1820]

छत्तीसगढ़ की उक्त आर्थिक स्थिति का चित्रण तद्युगीन कवि खांडेराव भोंसला ने अपने "राधा विरोध" [1830: 3-4] में इस प्रकार किया है:-

चलेहिं सकल नृप नीति बिहाई
परधन देखी धरती नृप गाता
केही विधि हरहूं तासु धन प्राता
प्राप्त होत के निधि धन हरपे
यह विधि लुटति पर्दधा लेइ

[डॉ हीरालाल शुक्ला, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत, 1995]

इस शोषण और लूट- खसोट का सतनामी आंदोलनकारियों ने सिर्फ विरोध भर नहीं किया, बल्कि उन्होंने किसी भी तरह के लगान व टैक्स देने से इनकार कर दिया.

---

03. सामंतवादी व्यवस्था का विरोध :-

The Great SATNAMI REVOLUTION [1820 AD] सतनामी क्रांति :

"...गुरु घासीदास भारतीय उपमहाद्वीप में प्रजातांत्रिक क्रांति के अग्रदूत थे. उनके द्वारा प्रवर्तित सतनामी विद्रोह ने शक्ति को धूल चटाने का पहला पाठ पढ़ाया. सतनामी विद्रोह ने शक्तिशाली तथा धनाढ्यों की नींद हराम कर दी थी. ..."

इस क्रांति में सामंतशाही तत्वों के खिलाफ सशक्त आंदोलन छेड़ दिया गया था. इसके लिए आंदोलनकारियों ने प्रमुख रूप से निम्न कार्य किया:-

[01] सामंतों के लिए आप को छोड़कर तुम शब्द का प्रयोग करना.

[02] सामंतों के प्रति क्रोध व अवज्ञा.

[03] शारीरिक उत्पीड़न के खिलाफ बदले की कार्यवाही.

[04] सामंतों को लगान व टैक्स देना बंद किया गया.

[05] सामंतों के खेतों पर हल चलाना छोड़ कर अपने खेतों पर हल चलाना.

[06] सामंतों की बेगारी छोड़कर अपने लिए श्रम करना.

[07] सामंतों का सम्मान करना छोड़ कर समानता का व्यवहार करना.

आदि,

इस संबंध में निम्नलिखित लेखों व पुस्तकों में विवरण दिया गया है:-

----

[6.2.4] पेशवाशाही मराठा सामंतों, सैनिकों, उनके स्थानीय चापलूसों व पुरोहितों को लगातार खदेड़ा जा रहा था. सतनामियों के ऊपर इनका शासन नहीं चलता था. **[मानवाधिकार स्वाभिमान दिवस, अप्रैल 2018, पृष्ठ 18]**

[3.] महान सतनामी आंदोलन (सन 1820 ईसवी): ऐसी ही परिस्थितियों में सन 1820 ईसवी से गुरु घासीदास जी के नेतृत्व में महान सतनामी आंदोलन प्रारंभ हुआ. जिसे सोनाखान के राजा रामराय और आदिवासियों ने सहयोग प्रदान किया.यह आंदोलन तेजी से बढ़ा. इस आंदोलन ने जातिवादी सामंती तत्वों को खदेड़ना शुरू कर दिया.

[गुरु बालकदास शहादत दिवस, मार्च 2018, पृष्ठ 11]

साहेब सर्वोत्तम स्वरूप के अनुसार:

32.शासक और सामंतों के खिलाफ आंदोलन: घासीदास साहेब का काल अंग्रेजों का शासनकाल था। जहाँ कहीं भी हो शासक और सामंतों की साठ - गाठ थी। आमजनता खेतिहर , मजदूर श्रमिकों का बुरी तरह शोषण हो रहा था। पर देश में अंग्रेजी हुकुमत का आतंक तो था ही लेकिन मराठा भोंसलों तथा छोटे - छोटे सामंतो का आतंक कम नही था। जो बड़े पैमाने पर सामंत लोग अनाप - सनाप लगान वसूलकर भोंसलों तथा अंग्रेजी शासकों दिया जाता था। गाँवों के मालगुजार (छोटे - छोटे सामंत) लोग अकाल की नौबत आती तो लगान न पटाने के कारण उसके खेत को बेदखल कर अपने नाम पर चढ़ा लेते थे। 25 प्रतिशत लगान शासन की ओर से होता था उसके चार गूना वसूलते थे। 25 प्रतिशत भोंसलो तथा कल्चुरी वंशों के लिए तथा 50 प्रतिशत अपने लिए इस तरह किसान और खेतिहर मजदूरों की दयनीय दशा हो चुकी थी।

खासकर छततीसगढ़ के दलितों की और अधिक दुर्दशा थी । चारों तरफ से शोषण होता ही था ऊपर से जात - पात छुआ - छुत का कहर सवर्णों द्वारा ढाया जाता था । यहाँ तक आज के पिछड़ा वर्ग के अंतर्गत आने वाले कुर्मी , तेली , सोनार , कायस्थ , आदि लोग जो ब्राम्हणों की दृष्टि से शूद्र है वे लोग भी दलितों के मोहल्लों में सफेद कपड़ा नहीं आते थे । यदि सफेद कपड़ा पहनकर आ जाये तो घर पर पानी छिड़कते थे या कभी - कभी स्नान भी करते थे । ब्राम्हण ठाकुर लोग तो तेली आदि का मुंह देखना भी पाप समझते थे।

डॉक्टर हीरालाल शुक्ला जी अपने प्रसिद्ध पुस्तक गुरु घासीदास संघर्ष और सिद्धांत में लिखते हैं- सामाजिक दृष्टि से देखें तो स्वर्ण और असवर्ण के बीच की खाईया इतनी अधिक थी कि संकिर्णता द्वेष और पारस्परिक अविश्वास अत्यधिक बढ़ गया था।

" ऐसी विषम परिस्थिति में एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी जो उस काल की अस्पृश्यता के कुहरे को चीरता हुआ सूरज की भाँति प्रकाशित होकर किंकर्तव्यविमूद जनता को सन्मार्ग के लिए ले जाये । निरीह और निष्प्राण जनता को आत्माविश्वास , आत्माशक्ति और मानवता के प्रति श्रद्धा से सशक्त बनाकर परिस्थिति से सामना करने के लिए खड़ा कर दे । गुरू घासीदास ऐसे ही युगद्रस्टा पुरूष थे । उनके सत्य कथन और उपदेशों का यह असर हुआ कि छतीसगढ़ में विद्रोह का बिगुल बज गया । उन्होंने ऐसी क्रांतिकारी बाते कहीं वह एक युगद्रस्टा ही कह सकता हैं । जन साधारण को लगा कि उनके सत्य मार्ग का अनुशरण करें । यहीं सतनाम आंदोलन (विद्रोह) का कारण बन गया ।

गुरू घासीदास संघर्ष समंवय और सिद्धांत पृष्ट 82

गुरू घासीदास ने सबसे पहले समूचे छतीसगढ़ की स्थिति का जगह - जगह रावटी डालकर अवलोकन किया । लोगों को पहले अवगत कराया कि सभी केवल मनुष्य हैं .. लेकिन सवर्णो के छुआ - छुत के कारण तथा शासकों और सामंतो द्वारा शोषण दस्तूर जारी था । 64 वर्ष की उम्र तक जनसमर्थन तथा लोगों का स्वाभिमान जगाने के लिए घूमते उपदेश देते रहे । व्यक्तिगत किसी के घर न हीं जाते थे । अपने काफिला के साथ रावटी लेकर गाँव - गाँव अलख जगाते भ्रमण करते थे । ऐसे में स्वयं वैद्य तो थे ही जहाँ जाते वहाँ लोगों की बीमारी का निदान भी करते थे । उनके लिए सर्पदंश, बिच्छू डंक, हैजा (महामारी) तथा कुष्ठ जैसे असाध्य रोगों का ईलाज अनेक प्रकार की जड़ी बूटियों द्वारा करना साधारण बात थी । इसलिए उनके साथ हजारों की तादाद में इकट्ठे हो जाना स्वाभाविक था।

गुरू घासीदास साहेब के उपदेश सुनने के बाद बड़े पैमाने पर 1820 से 1830ई. के पहले व बाद मे ... समाज उनके आंदोलन मे सामिल होते गए। जब जब समूह मे बाबा जी के साथ अपने शोषण के प्रति जागरूक हुए तो उन्हें विश्वास हो गया कि हमारा आंदोलन सफल हो जायेगा। क्योंकि सदियों से सोए हुए समाज में उन्होंने साहस का प्राण फूंकना शुरू किया। जिसे अतिशयोक्ति अलंकार में यह कहा जाता है कि बाबा जी " गैरियार बैल " को चला दिए । गैरियार (कादर) को चलाना अधिक कठिन बात नहीं थी जितना की पूरा - पूरा लाखों समाज के लोग सदियों से गैरियार था। समाज को पढ़ने लिखने की हिन्दू धर्म में मनाही थी इतना ही नहीं तरह तरह की कठोर पाबंदी भी लगाई गयी थी। जिससे की 80 से 90 प्रतिशत जनता न पढ़ लिख सकें ऐसे हजारों साल से खोये हुए स्वाभिमान को जगाया।

उनका कहना था कि शोषक लोग बढ़ा चढ़ाकर लगान वसूलते थे। इसलिए लगान देना बंद कर दो। जहां जहां उनका काफिला जाता था वहां वहां वही प्रचार होता था। सभी अपने शोषण के खिलाफ जागरूक होकर लगान देना बंद कर दिए। बाबा गुरु घासीदास साहेब 94 वर्षों तक जीवित रहे तो उन्हें लंबा आंदोलन चलाना पड़ा। शासक और शोषक वर्ग की आमदनी घट रही थी तो दोनों मिलकर आंदोलन को प्रारंभिक काल में उसे ब्रिटिश शासन के अधिकारी वर्ग दबाने की पुरजोर कोशिश की इस

आंदोलन को उन लोगों ने बलपूर्वक कुचलने का प्रयास किया। लेकिन गुरु जी के नेतृत्व में लोगों ने डटकर मुकाबला किया। बाबा जी का विचार था कि उन्होंने सतनाम आंदोलन का आविष्कार किया है। वह समाज में अमिट छाप बन जाए और समूचा छत्तीसगढ़ शासकों के खूनी पंजा से मुक्त हो। उन्होंने अपने वृद्धावस्था में भी अपना आंदोलन जारी रखा और लाखों ... समुदाय को वैचारिक क्रांति के पथ पर अग्रसर किए। अधिकतर या आंदोलन मुख्य रूप से 1820 से 1830 ईसवी के बीच जोरों से चला।

अंग्रेज लेखक चीशोल्म (1868 पैरा 102)

Ghasidas lived to a raipe old age to see the belif he had founded a living elaves in society, constituting the guide and directing the aspiration exceeding a quarter of million.

पता नहीं छत्तीसगढ़ का शोषण चक्र कब से चला आ रहा था। जिसे छत्तीसगढ़ के निवासी मुक पशु बन सहते आ रहे हैं। पूर्व में लिखा जा चुका है कि 25% लगाम देने का नियम रहता था। इसके एवज में सामंतों द्वारा मनमाने ढंग से 4 गुना वसूल किया जाता रहा। जिसके ज्ञान से गुरु घासीदास ने सभी छत्तीसगढ़ वासियों को अवगत कराया। इसलिए सामंतों के खिलाफ ... ने अपनी आवाज बुलंद की। जो मालगुजार नीच समझकर उपेक्षा करते थे उन लोगों की संपत्ति सतनाम आंदोलन कार्यकर्ताओं ने लूटी थी। किंतु सीधे-साधे प्रेम के पैगाम देने वालों को कोई आहत या नुकसान नहीं पहुंचाया। (#रसेल तथा हीरालाल, 1916 खंड 1)

छत्तीसगढ़ में सतनाम आंदोलन मराठा तथा ब्रिटिश अधिपत्य के काल में प्रारंभ हुआ था मराठा काल में जब किसानों की भूमि पर भोसलों की नजर लगी तो किसानों के संस्कार भी परिवर्तित होने लगे क्योंकि भूमि और फसलों से मुक्त साहचर्य के बिना उनके संस्कार भी हर दिन हो रहे थे। हम यह जानते हैं कि मराठा सैनिक भोंसला सिंधिया घरानों द्वारा पोषित पेंडारी छत्तीसगढ़ के किसानों की खड़ी फसल को काट रहे थे। फसलों के अभाव में यहां की जनता के संस्कार भी खंडित हो रहे थे संस्कारों के खंडित होने की स्थिति में विद्रोह की भावना का जन्म लेना स्वाभाविक है धर्म भी चौकी अनुकूलन के समर्थकों नहीं जुटा पाया गुरु घासीदास साहेब के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ के मैदानी क्षेत्र में क्रांति की स्थिति का निर्माण हो गया।

गुरु घासी के समय में गांव के किसी मालगुजार जमीदार को देखकर आम जनता चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष तथा 80 90 वर्ष के बुढ़ा बुढ़ी क्यों ना हो उसे देखकर अपनी जगह चबूतरा या कहीं बैठे स्थान से उठकर दंडवत अर्थात डंडे की तरह लेट कर अभिवादन करना पड़ता था। मालगुजार जमीदार चाहे 20 25 वर्ष का नवयुवक क्यों न हो यदि कोई ऐसा नहीं करता तो उस पर कोड़े बरसाते थे। ऐसी कुप्रथा को देखकर गुरु घासी से रहा नहीं गया उन्होंने लोगों का आह्वान किया कि ए मेरे लोगों! ऐसा अभीवादन करना छोड़ दो मालगुजार है तो तुम्हें पाल नहीं रहा है। तुम्हारे सामने वह 20 25 वर्ष का बच्चा है और तुम्हें बुढ़े ऐसा क्यों करते हो यह बहुत बड़ी गुलामी है।

जो मां-बाप तुम्हें पालते पोंसते हैं उनके साथ ऐसा नहीं कर पा रहे हो और जो सदियों से तुम्हारा शोषण करते आया है उसके साथ ऐसा अभिवादन बिल्कुल मत करना। यदि जोर-जबर्दस्ती तुम पर जुल्म करे तो सभी संगठित होकर उसे मुकाबला करने के लिए तैयार रहना क्योंकि वह अकेला है और तुम लोग बहुत से लोग हो। बहुत काल से डरे सहमे से लोग थे बाबाजी के एक बार के उपदेश से लोगों में क्रांति आ गई ऐसी बात नहीं। कई-कई बार सामाजिक संगठन खड़ा कर उक्त शोषण के विरुद्ध आंदोलन करना पड़ा। जहां कहीं भी समूह रूप में स्वाभिमान जागा तो लोगों में डर की भावना दूर हो गई तथा ऐसे आतताइयो के खिलाफ समुचे छत्तीसगढ़ में हवा फैल गई।

सामंतो व मालगुजारों को सम्मान करने की परंपरा कब से चली आ रही थी वह कहा नहीं जा सकता। हो सकता है मनु जी ने ब्राहमणी व्यवस्था को आम लोगों पर जबरदस्ती लाद दिया हो जो आज तक

लोगों के दिल दिमाग से नहीं उतर पा रही है जो एक लिखित नियम में रहा है। किंतु सामंतों जमीदारों के लिए ऐसी कोई लिखित नियमावली रही है जिसका पता नहीं चला। यह वाचिक नियम ही जान पड़ता परस्पर एक दूसरे की बातें सुनकर ऐसी अभिवादन करने की परंपरा चल पड़ी थी राजाओं (अंग्रेजी शासक) छोटे-छोटे राजाओं के सहयोग से जमीदारों जागीरदारों तथा मालगुजारों के संप्रभुता की प्रभुता को व्यक्त करने का व्यापक साधन था ।अधिनस्थ जनता इस उपकरण से परिचित थी उसका सम्मान करती थी तथा दूसरे को सम्मान करने की प्रेरणा देती थी। हीरालाल शुक्ला जी लिखते हैं कि गुरु घासीदास जी ने इन उपकरणों को झटका देकर विद्रोह के मूल सूत्र को समझा था। यह कहना सही होगा कि उक्त वाचिक तथा अवाचिक संकेतों (शब्द हाव,भाव, इतरप्रतीक) गुरु घासीदास ने क्रमिक किंतु सर्व व्यापी उल्लंघन किया।यह विद्रोह था वाचिक तथा अवाचिक संप्रेषण सामंती समाज में सांकेतिक रूप शक्ति के संबंधों पर आधारित थे। उन पर घासीदास ने तीव्र प्रहार किया। फलस्वरूप संघर्ष छिड़ गया।

शोषक वर्गों द्वारा जो अनेक प्रकार के पाखंड फैला रखी थे इन पाखंडों और दंभियों पर कड़ा प्रहार किया। यही आंदोलन ही गरियार बैल को चलना सिखाया। उपर्युक्त उदाहरण को पढ़ लिए कि सामंतों के आगमन पर अभिवादन किया जाता था। केवल इतना ही नहीं जैसे आज मुख्यमंत्री तथा अन्य ग्रेट वीआईपी के आने पर चारों तरफ से रास्ता रोककर उन्हें पार करने दिया जाता है। वैसे ही पहले मालगुजारों के रास्ते गुजरने तक आम आदमी को अपनी यात्रा रोक देनी पड़ती थी और किसी एक किनारे पर विनीत भाव से खड़े होकर उन्हें पार होने दिया जाता था। बाबा जी के विचारों से प्रभावित लोग तथाकथित ऊंची जाति तथा मालगुजारों को आते देख रास्ते नहीं छोड़ते थे और ना ही किसी प्रकार से अभिवादन किया आता था। जिन जिन लोगों का ... स्वाभिमान जगा था वे सभी एक समूह बनाकर चलते थे ताकि इस समाज पर मालगुजार (सामंत) तथा स्वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्री) लोग जुल्म ना कर सके।

पूरे देश की व्यवस्था जैसी तैसी इसी प्रकार थी। जहां कोई इसका विरोध करने सामने नहीं आया। इसी नियम के अंतर्गत गुजरात में एक पाटीदार युवक अपने बड़ों के सामने बातचीत की शुरूआत खुद नहीं कर सकता। (#पोषाक 1972-95) इसी प्रकार उड़ीसा में बौरी नामक अछूत जाति के लोग ऊंची जाति के लोगों के सामने तब तक नहीं बोल सकते थे जब तक उन्हें बोलने की इजाजत नहीं दी जाती थी। (#फीमैन 1979-85) ठीक इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में भी निम्न जाति (... शुद्र की अनेक जातियां) उच्च जाति के व्यक्ति के सामने बातचीत करते समय थोड़ी दूरी बनाए रखते थे ताकि उसे छू ना जाए। जो कुछ कहा जाता था उसे वे सून लेते थे। कुछ भी जवाब नहीं देते थे। (#रसेल और हीरालाल, खंड एक 1916) रसेल तथा हीरालाल के शब्दों में "A shudra was probhibited by the servest penalties from approaching with in a certain disttance of a member of any higher ccastes"

बंगाल के किसी जमीदार के सामने किसी किसान का बोलने का अर्थ है जमीदार का अपमान था। किसी प्रकार यदि बोल दिया तो जमीदार चीखकर कहता है अरे सूअर की औलाद तूने मेरे सामने मुंह खोलने की हिम्मत कैसे की? किंतु ऐसे मालगुजार सामान तथा दम्भियों से बाबाजी ने डटकर लोहा लिया।

इसी प्रकार अपने ...... भारत में बंगाल के 1860 ईस्वी के विद्रोह 1850 ईस्वी में केरल के मोपला विद्रोह या 1820 -30 ईसवी के छत्तीसगढ़ के सतनामी विद्रोह में यही बात देखी जा सकती है। मलबार के किसानों को धनाढ्य नायर जमीदार "तू" में संबोधित करते थे तथा किसान प्रत्युत्तर में "आप" कहकर संबोधित करते थे। 1852 ईसवी के तिरुनागादी के थानगक के विद्रोहियों ने जनता से कहा था कि जैमिनी (जमीदार) से बातचीत करते समय "तू" के बदले "तू" बात करें। पारंपरिक "आप" को

सदा के लिए तिलांजलि दे दें। यही बात केरल के मोपला 1850 विद्रोही तथा तिरुरंगादी के थागक 1852 के विद्रोही के पहले 1820 -30 में सतनामियों से कही थी और पूर्ण समानता के लिए लड़ने का आह्वान किया था।
(#ग्रांट 1870 #रसेल तथा हीरालाल प्रथम खंड) उक्त आदेश में जमींदारों के लिए एक प्रकार से खुली चुनौती थी। (धनगढ़े 1970- 112-41)। अपने अपने क्षेत्र में देश के कई कोने से विद्रोहियों ने सामंतों के विरुद्ध बगावत शुरू की थी लेकिन गुरु घासीदास ने सबसे पहले बगावत की थी और सबसे पहले 1820- 30 के बीच की थी। इसको महत्व जातिवादी मानसिकता के पंडित लेखकों ने नहीं दिया। जो कुछ किया है वह अंग्रेजों ने। जिसे हीरालाल शुक्ला ने लिखा है जो धन्यवाद के पात्र हैं।
[साहेब सर्वोत्तम स्वरुप, गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, पृष्ठ 164-173]

डॉ दादूलाल जोशी 'फरहद' के अनुसार
राजशाही व्यवस्था पर प्रहार: तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था राजशाही और घोर सामंतवादी थी, शनैः शनैः उस पर उपनिवेशवादी अंग्रेजों का शिकंजा कसता जा रहा था। उस व्यवस्था का मूल मकसद आम जनता को लूट कर अपना कोष भरना मात्र था। उस समय स्थानीय मालगुजार मालगुजारी से बेदखल किए जा रहे थे। छोटे-छोटे किसानों की काश्तकारी छल बल से छीनी जा रही थी। आमजन का भरपूर शोषण किया जा रहा था। यह शासन प्रशासन की जानकारी और सहमति से हो रहा था। इन परिस्थितियों का उल्लेख कैप्टन ब्लंट, फॉरेस्टर एवं एगन्यू ने अपने अभिलेखों में किया है।
लिखित कागजातों पर अंगूठा लगवा कर आम जनता की संपत्ति को चालाक लोग अपने कब्जे में कर लेते थे। इस तरह शोषित पिछड़ी जातियों के लोग जमीन से बेदखल किए जाते थे। इस दुष्प्रवृत्ति के खिलाफ सतनामियों ने ... संघर्ष किया...।
[डॉ.दादूलाल जोशी 'फरहद', गुरु घासीदास का सतनाम आंदोलन: एक जनक्रांति, हरिभूमि चौपाल, गुरुवार, 05 दिसंबर 2019, पेज 1]

डॉ शंकरलाल टोडर के अनुसार
(5)। राजनैतिक कारण:- राजाओं के द्वारा अपनी ही प्रजा को लूटना घासीदास को बढ़ा असमंजस में डाल दिया था।जब रक्षक ही भक्षक हो जाए तब किन के शरण में जाया जाए? ऐसी स्थिति में केवल दो ही रास्ते थे। एक बगावत दूसरा मृत्यु को आत्मसात कर लेना। आत्म हत्या पाप है। अगर मरना ही है तब अत्याचारों के विरुद्ध शंखनाद करके उससे घोर युद्ध क्यों ना किया जाए। यदि जीत गए तो वाह-वाह यदि मर गए तो भी वाह-वाह। कहा जाता है गुरु घासीदास के इसी विचार ने सन 1857 के विद्रोह को जन्म दिया था।एक गैरसतनामी लेखक ने बाबा गुरु घासीदास को 1857 के स्वतंत्रता संग्राम का प्रेरक माना है। गुरु घासीदास के इस विचार ने दुखी जनता में अभूतपूर्व साहस का संचार कर दिया।तत्कालीन समय में मराठा शासक अपने सिपाहियों के द्वारा स्वयं, पिंडारियों के द्वारा तथा स्थानीय शासक स्वयं अपनी सेना सहित अपनी ही प्रजा को लूटते थे।इनका इतना चारित्रिक पतन हो गया था कि यह धन के साथ नारियों को भी लूट कर ले जाते थे। इनके विरुद्ध शंखनाद आवश्यक था इससे घासीदास का मन अधिक विचलित हो उठा था।एक तरफ एक गरीब व्यक्ति और दूसरी और शासक वर्ग। किंतु बाबा जी ने अध्यात्म साधना के द्वारा इतनी शक्ति अर्जित कर ली थी कि यदि सभी राजा एक साथ उस पर आक्रमण करते तो भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। अतः उन्होंने उन शाही अत्याचारों के विरुद्ध अपना धार्मिक शंखनाद करने का संकल्प लिया।
(6) सतनाम आंदोलन- गुरु घासीदास जी राजनीतिज्ञों, राजाओं तथा अंग्रेजों के समक्ष चुनौती पेश कर रहे थे।गरीबों ने अपनी एकता के समक्ष बड़े-बड़े सुरवीरों को मौन होते देखा तथा उनके प्रति अंग्रेजों की

रवैया को नरम होते देखा। इसलिए लोग बेझिझक इसमें शामिल होने लगे। इससे इस आंदोलन का स्वरूप भव्य हो गया। रायपुर, बिलासपुर रायगढ़ के गजटियरों के अनुसार इसमें शामिल होने की एक तरह से लोगों में होड़ सा होने लगा। इस प्रवाह में दो हजार से भी अधिक उच्च जाति के लोग शामिल हो गए।

[डॉ. शंकरलाल टोडर, सतनामी और सतनाम आंदोलन, पृष्ठ 185-186 और 195-196]

डॉ हीरालाल शुक्ला के अनुसार

"...सतनामी विद्रोह के प्रारभ होने पर प्रारंभ में गैर सतनामियों ने उक्त विद्रोह को एक ऐसे कोलाहल के रूप में देखा , जिसमें सम्मान के संकेतों का पूर्ण अभाव था । सतनामी आन्दोलन के शुरू होने पर #लावलोर (1867) ने लिखा था मई महीने के प्रारंभ में लोगों ने एक बात पर गौर किया । सतनामियों ने अपनी पारम्परिक शान्ति और सम्मानसूचक व्यवहारको छोड़ दिया था । यदि वे बदतमीज नहीं थे , तो अब दब्बू भी नहीं रह गये थे। वे समूहबद्ध होकर आम रास्ते से निकलते थे और उच्च जाति के लोगों को रास्ता भी नहीं दे रहे थे । अपनी बेसुरी आवाज में तेजी से गा रहे थे । उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं थी कि कोई उन्हें सुन रहा है या नहीं । बाद में जब बालकदास के काल में उग्रता अपनी चरमावस्था तक पहुंची तो लोगों ने पाया कि सतनामी अविनीत हो गए थे । मालगुजारों के प्रति पारम्परिक सम्मानजनक निवेदन की सूचक मुस्कराहट का स्थान क्रोधसूचक भृकुटि ने ले लिया था और प्रत्येक सतनामी हीन मानने वालों के प्रति उपेक्षापूर्ण भाव रखते थे (#रसेल तथा हीरालाल 1916 , प्रथम खण्ड) । इससे यह जाहिर होता है कि . मालगुजारों और मराठा - अधिकारियों ने सतनामियों से यह आशा की थी कि वे सम्पन्न जातियों के प्रति अधीनता को अनुक्रमिक हावभाव तथा संयमपूर्ण व्यवहार के माध्यम से प्रदर्शित करें । साहब की सवारी आने पर सड़क छोड़ विनीत भाव से दूरखड़े रहें । साहब के सामने गुलामी की मुस्कराहट बिखेरे ऐसा इसलिए कि इससे पूर्व ये सभी हावभावलोक सिद्धबन चुके थे । एक सुस्थापित संकेत के अंग थे , जिनके माध्यम से शासित पर शासक की शक्ति या रुतबे का बोध होता था । बेसुरा गाना क्रोधभरी निगाहें और दर्पोक्ति आदि से सम्बद्ध विविध संकेत इसीलिए उन लोगों की नजरों में सन्देह पैदा कर रहे थे । जो एक खास प्रकार के सम्मान के आदी हो चुके थे । इस विपर्यास (उपटपुलट) में उन्होंने स्वामी और सेवक के बीच पूरी तरह पोषित सहयोग की अनुपस्थिति ही नहीं देखी , अपितु सेवक के मन में शत्रुता की स्थानापन्नता का भी अन्दाजा लगा लिया था । इस दुहरे सम्बन्ध में निष्पक्षता का कोई स्थान नहीं था । इसलिए घासीदास की सहमति बाद में असहमति में बदल गयी और सतनामी आन्दोलन असहमति का पंथ बन गया (#रसेल तथा हीरालाल , 1916 खण्ड -1.307) । सतनामी - विद्रोह से हम ऐसे अनेक प्रमाण दे सकते हैं , जिनमें सतनामियों के पारम्परिक स्वभाव का विचलन मिलता है । इस प्रकार के प्रमाण विरोधी चेतना के ही संकेतक है । सभ्यजनों (इलीट) के अधिकारों के संकेत सर्वव्यापी आग्लमराठा - शासन को अधीनता में उन्होंने छतीसगढ़ के जीवन को इतना अधिक जकड़ रखा था कि किसी प्रकार के असंतोष में सबसे पहले उन्हीं संकेतों को नकारा जाता था । इतिहासकारों का उक्त सामग्री पर आज तक ध्यान ही नहीं गया है । हमारा विश्वास है कि छत्तीसगढ़ में सतनामी विद्रोह की प्रकृति को हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम यह उल्लेख न करें कि शासक - संस्कृति में प्रभाविता तथा पराधीनता किस प्रकार व्यक्त हो रही थी और गुरु घासीदास उसे बदलने का कैसा प्रयास कर रहे थे । [99-100]

मनु का कथन है कि किसी वृद्ध को आते देखकर एक युवा को अपना आसन छोड़कर उसका स्वागत इसलिए करना चाहिए क्योंकि जब वृद्ध युवा के पास पहुंचता है तो युवा की ऊर्जा कम हो जाती है ।

किन्तु यदि वह खड़े होकर वृद्ध का अभिवादन करता है , तो पुन ऊर्जा - सम्पन्न हो जाता । (#मनु 11.120) । मनु - स्मृति में ऐसे अनेक श्लोक हैं , जिनमे बडे के आने पर खड़े होने, झुकने,चरण छूने आदि का विधान मिलता है । ऐसे उदाहरण अवर स्थिति या मातहती के सूचक है । शरीर की भाषा की यह शक्ति न केवल स्मृतिग्रंथों में उतर कर आयी है , अपितु राजशक्ति को भी आख्यापक थी । #अबुल_फज्ल (166-7) के अनुसार राजा के द्वारा बनाए गए विधान के ही अनुसार जनता को अभिवादन करना पड़ता था । " वास्तविक विनम्रता को पोषित करना ही इसका लक्ष्य था। उदाहरण के लिए मुगल - दरबार में अभिवादन की सर्वस्वीकृत शैली कोर्निश थी , जिसके अनुसार अभिवादन करने वाला विनम्रता से अपना सिर झुका लेता था , जो बादशाह के प्रति विनम्रता का इजहार था । इसीलिए तसलीम का अर्थ था कि व्यक्ति अपने आपको निर्जीव वस्तु माने ।
मुगल - सल्तनत की ब्रिटिशराज में स्थानापन्नता से इस प्रकार के सामन्ती आंगिक प्रतीक में कोई अन्तर नहीं आया । औपनिवेशिक भारत में वे भी स्टेटस मार्क के रूप में प्रचलित थे और आज भी जीवित है । #श्रीनिवास (1952.47,96) के अनुसार जब किसी उत्सव में कोई कुर्ग आयु में अपने से बड़े से मिलता है , तो यह शरीर को आधा झुकाकर दोनो हाथों से बड़े के दोनों पैरों को छूकर अभिवादन करता है । चरण छूने के बाद छोटा व्यक्ति अपने दोनों हाथों को मोड़कर शिर पर रखता है । अभिवादन की यह शैली किसी देवता को नमस्कार करने में भी प्रचलित है । वास्तविकता तो यह है कि इस प्रकार की अन्त प्रेरित शारीरिक चेष्टा में विभेदकता सभी सामाजिक सम्बन्धों में देखने को मिलती है- पिता और पुत्र के बीच , पति और पत्नी के बीच , जमीदार (गोटिया) और किसान के बीच , उच्चजाति और निम्न जाति के बीच तथा स्वामी और सेवक के बीच । उदाहरण के लिए मध्यप्रदेश में पत्नी के लिए यह एक बाध्यता थी कि पति को आते देखकर दूर से ही झुककर धरती को अपनी अंगुलियों से छूकर समर्पण की भावना व्यक्त करे। इस क्षेत्र का निम्न जाति का बलाही किसी ब्राहमण से मिलते समय कुछ कदम पीछे हो जाता था और दोनों हाथों से धरती को छूता था । यही स्थिति सतनामी - आन्दोलन से पूर्व छत्तीसगढ़ के शुद्रों की थी । गुरु घासीदास ने इस प्रकार के सम्मानप्रदर्शन को समतावादी समाज के लिए व्यर्थ समझा और यह आदेश दिया कि गुरु को छोड़कर अन्य किसी के प्रति इस प्रकार का सम्मानप्रदर्शन नहीं होना चाहिए । गुरु के अतिरिक्त केवल सूर्यदेवता के प्रति ही सतनामी आंगिक चेष्टाओं के माध्यम से भक्तिभाव प्रदर्शित करते हैं , " बाएं पैर को उठाकर नीचे झुकते हुए ये सूर्य को लक्ष्यकर तीन बार सतनाम का उच्चारण करते हैं " (#ग्राण्ट 1870 ; #बोस 1890)। मातहती भरे ऐसे हावभावों का एकाएक विलोप सतनामी - विद्रोह के ही कारण सम्भव हो सका था । छत्तीसगढ़ के अन्य समुदायों में मातहतो को सूचक ये शारीरिक चेष्टाएँ आज भी विद्यमान है । सतनामी - विद्रोह ने परम्परा से चली आ रही विनम्रता भरी उक्त चेष्टाओं को पहली बार नकारा था । संभवतः यही कारण है कि ब्राहमणों (#तर्करत्न 1910.58,59) ने युगान्त की कल्पना करते हुए भविष्यवाणी की थी कि जिताक्ष शूद्र भी वर्ग के उत्तराधार को उलट - पुलट देंगे । " युगान्त की इस स्थिति को हमने घासीदास के समय में भी उस समय देखा , जब सतनामी - आन्दोलन में अनेक अवसरों पर गालीगलौजपूर्ण हावभाव उभरे थे , जिनसे शत्रुता का स्पष्ट आभास होता था । सतनामियों के शत्रुतापूर्ण इन हावभावों से संभ्रान्त इतने अधिक पीड़ित हुए कि शायद मारपीट की स्थिति में भी उन्हें इतनी पीड़ा न होती (#रसेल तथा हीरालाल , प्रथम खण्ड 1916 , पृ.314) लोगों के मन को यह बात बार - बार कचोटती थी कि मामूली किस्म के लोग भी बराबरी से बात कर रहे हैं । छत्तीसगढ़ में झुकने और हाथ जोड़ने की स्थिति का विलोम पैदा हुआ और पहली बार ऐसा हुआ कि अपने गुरु या ' सतनाम को छोड़कर सतनामियों ने किसी के सामने

हाथ जोड़ना बंद कर दिया । गुरु तो किसी को नमस्कार करता ही नहीं , चाहे वह उस क्षेत्र का राजा हो या मुख्यमंत्री । [111-112]
अवाचिक संकेतों का एक अन्य वर्ग भी है , जो सामाजिक स्थिति और स्टेटस् " का प्रतीक है , और जिसकी अभिव्यक्ति दूरी में होती है । इस प्रकार अधिकार मात्र की सूचक कालसूचक दूरी भी " श्रेष्ठता के अधिकार के रूप में अभिव्यक्त हुई है । #मेयर (1970,220) के अनुसार मालवा में किसी महिला को अपने परिवार में स्थिति इस बात पर आधारित थी कि वह भी परिवार की अन्य सभी स्त्रियों के साथ भोजन करती है अथवा उनके " जीम " लेने के बाद उसका भोजन होता था । कुर्ग में पारम्परिक तौर पर मुखिया को " मूयपन्द " कहा जाता है , जिसका तात्पर्य है " श्रेष्ठव्यक्तिः । #श्रीनिवास (1952 : 63,205) का कथन है कि " उक्त श्रेष्ठता का भाव सर्वव्यापी था । " सतनामियों में गुरु को सर्वश्रेष्ठ माना जाता था और गुरु के बाद सभी लोगों के साथ समानता का व्यवहार होता था (#ग्राण्ट 1870)
सभी प्रकार की सांस्कारिक क्रियाओं में सर्वप्रथम गुरु ही अगुवा होता था । गुरु ने द्विजवर्ग को श्रेष्ठता के भाव को नकार दिया था । प्राचीन काल में .शुद्र. मजदूर या किसान पहले उच्च जाति के किसानों का खेत जोतते थे , उसके बाद ही अपना खेत जोत सकते थे (#फुक्स 81,93) । घासीदास के सतनामी - आन्दोलन ने इस परम्परा को पूरी तरह उलट दिया था । [112]
"... जब वास्तविक विद्रोह घटित होता है और वह चीजों को उलट पुलट देता है, तब वाचिक सम्मान के सारे प्रतिमान तोड़ डाले जाते हैं और समतुल्य आधिकारिक संरचना चरमराकर ढह जाती है । ऐसे हमें अनेक उदाहरण मिलते है जब सतनामियों ने सामन्तों के प्रति सीधे गालीगलौज का प्रयोग कर भाषा को दूषित किया है । उन्होंने सामंतों जैसी भाषा (हिन्दी)का व्यवहार कर सभ्य संस्कृति (इलिट कल्चर) की खोखली सरहद को अनेक बार रौंदा है (रसेल तथा हीरालाल , प्रथम खण्ड 1916,पृ.314) । इसी प्रकार इंग्लैण्ड में खेतिहर मजदूरों के विद्रोह में लुटेरों ने गंदी भाषा का इस्तेमाल किया था (#हाब्सबाम तथा #रुदे 1969.211-12) । प्रबल वर्ग - संघर्ष की स्थिति में वाचिक सम्मान के नियमों को तोड़ना छत्तीसगढ़ (या अपने देश) की एक आम बात थी और आज भी है । अपने लिए सतनामी जब उस शब्द का प्रयोग सुनते हैं , जिसे लगभग दो सौ वर्षो पहले उन्होंने दफन कर दिया था , तो वे आगबबूला हो जाते हैं । ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि जब उन्होंने किसी हिन्दी के ग्रंथ में भी ऐसे शब्दों का प्रयोग देखकर प्रबल आन्दोलन छेड़ा है और शासन ने उस शब्द को असंसदीय घोषित कर दिया है । बदले में सतनामियों ने भी इलीट वर्ग के लिए गंदी - गंदी गालियों का प्रयोग किया था । [105-106]
घासीदास के विवरण में शारीरिक उत्पीड़न के सन्दर्भ भी हमें मिलते हैं । गाँवों में यह सामान्य परम्परा थी कि किसी भी नियम के उल्लंघन में शूद्रों को शारीरिक यातनाएं दी जाती थी । गोस्वामी तुलसीदास का अधोलिखित पद प्रसिद्ध है-

ढोल गवार शूद्र पशु नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ।।

घासीदास ने उसका विरोध किया और उन्होंने यह आदेश दिया कि किसी सतनामी को यदि किसी दूसरी जाति का व्यक्ति मारेगा और वह सतनामी उसका प्रतिरोध नहीं करेगा , तो इस सतनामी को जाति से बहिष्कृत कर दिया जाएगा । भले ही मारने वाला कितनी हो ऊंची जाति का न हो :"A Satnami is put out of Caste if he is beaten by a man of another caste." . (#रसेल तथा हीरालाल , प्रथम खण्ड 1916 पृ.314) । पारंपरिक व्यवस्था के विरोध में सतनामियों ने उत्पीड़न करने वाले को धकियाया । उन्हें कोहनी से मारा । लातधूंसों से पीटा । उन्हें

भालों से छेद डाला । इस रूप में पुरानी व्यवस्था उलट गयी और गांवों में कोई दूसरी जाति का व्यक्ति सतनामियों का शारीरिक उत्पीड़न करने से डरने लगा । सतनामी - आन्दोलन की घटना का बयान करते हुए एक व्यक्ति ने सतनामियों द्वारा किए गए ' अपमानजनक संकेतों " को भी चर्चा की है । ' इलोट ' वर्ग की प्रभुसत्ता को बरकरार रखने वाले सिपाहियों को भूत कहा गया । ऐसे भूतों को सूपों तथा नगाड़ों की आवाजों से फटका जाता था । गाँव को प्रतिष्ठा न दिलाने वाले असम्मानजनक अतिथियों के प्रति भी ऐसा ही व्यवहार किया जाता या । सतनामी मानते थे कि परदेशियों के आने से उनके गांव अपवित्र हो गए थे । इसलिए प्रतीकात्मक "बोहरानी उत्सव" के माध्यम से उसे पुन : पवित्र करते थे । ऐसी स्थिति में बाहरी लोगों के प्रति सतनामियों का व्यवहार पहले जैसा विनम्रतापूर्ण नहीं था । [113-114]

क्रांति के प्रारंभिक दौर में सामंतों तथा ब्रिटिश अधिकारियों का यह प्रयास था कि इसके प्रचार को बलपूर्वक रोक दिया जाए। घासीदास 94 वर्षों तक जीवित रहे और उन्होंने विरोध का डटकर मुकाबला किया था। वह चाहते थे कि जिस पंथ का उन्होंने आविष्कार किया है वह समाज का जीवित तत्व बन जाए। (चिशोल्म1668 पैरा 102) इसलिए वे निरंतर मार्गदर्शन करते रहे और .वंचित. जनों की महत्वाकांक्षाओं को क्रांति के पथ की ओर ले गए। उक्त क्रांति 1820 इस्वी से 1830 ईस्वी के मध्य घटित हुई थी। [82]

"हिंदू जमीदारों तथा साहूकारों से संघर्षरत रक्तरंजित युद्ध में फंसे सतनामियों ने ..." [131]

"... गुरु घासीदास ने वहां एक तालाब खुदवाया जहां सतनामी एकत्र होते थे तथा अपने ही सरोवर में स्नान करके (रसेल तथा हीरालाल प्रथम खंड पृष्ठ 312) संघर्ष के लिए कुच करते थे।..."[132]

"... सतनामी हिंदू मालगुजारों के खिलाफ सशस्त्र आक्रमण कर रहे । बदले में हिंदुओं ने भी गिरौद भंडारपुरी आदि पर आक्रमण किया। समूचे छत्तीसगढ़ में बलवा और हत्या का संगठित प्रयास 1830 ईस्वी तक चलता रहा...." [133]

"... गुरु घासीदास भारतीय उपमहाद्वीप में प्रजातांत्रिक क्रांति के अग्रदूत थे। उनके द्वारा प्रवर्तित सतनामी - विद्रोह ने शक्ति को धूल चटाने का पहला पाठ पढ़ाया। सतनामी विद्रोह ने शक्तिशाली तथा धनांढ्यों की नींद हराम कर दी थी। ..." [134]

[डॉ. हीरालाल शुक्ला, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत, 1995]

----

04. नरबलि व पशुबलि का निषेध :-

The Great SATNAMI REVOLUTION [1820 AD] सतनामी क्रांति

मनुष्य ने अपने स्वार्थ के लिए ईश्वर, देवी देवताओं व शासकों के नाम पर अनगिनत मानव और पशुओं की अनावश्यक रुप से हत्या किया है. संसार के अधिकांश क्षेत्रों चीन, यूनान, रोम, ईरान, अमेरिका, अफ्रीका, नेपाल आदि में बलि प्रथा अपने समय में अस्तित्व में था. कुछ स्थानों में आज भी है. उदाहरण के लिए देखें तो

वैदिक सनातन धर्म में बलि एक आम रिवाज है. जिसे पूरा करना काफी पुण्य का कार्य माना जाता था है इस संबंध में अनेको श्लोक हैं. उनमें से एक इस प्रकार हैं:-

एश्वर्येषु पशुहिंसन्वेदतत्वार्थ विद्विज:।
आत्मानं च पशुंचैव गमयुत्तमां गतिम।।
[मनुस्मृति अध्याय 5 श्लोक 42]

अर्थात वेद का ज्ञाता पंडित ब्राह्मण यज्ञ में पशु वध करता हुआ स्वयं तथा उस पशुओं को श्रेष्ठ है गति को प्राप्त कर आता है। अर्थात स्वर्ग में सुख पहुंचाता है। **[साहेब सर्वोत्तम स्वरुप 245]**

अजय बंसल के अनुसार

यहूदी धर्म में बलि चढ़ाना सबसे जरूरी धार्मिक कार्य था। यहूदियों के बाइबिल में अनेक जगहों पर बलि चढ़ाने का आदेश दिया गया है।

अब्राहम ने ईश्वर से एक पुत्र मांगा। इस पर ईश्वर ने कहा तो मुझे एक 3 साल की बछिया एक इतना ही बड़ा बकरा एक बहन एक पक्षी और एक जवान कबूतर लाकर दे। अब्राहम ने यह सारे जीव पकड़े और सभी को काटकर बलि चढ़ा दी। ईश्वर खुश हो गया और जल्दी ही उसे एक बेटा दिया। अपने बेटे के बड़े होने पर अब्राहम उसको बलि चढ़ाने के लिए चल दिया। तभी ईश्वर ने बलि के लिए एक भेड़ को भेज दिया जिससे अब्राहम के बेटे की जान बच गई।

ईसाई भी जीसस की फांसी को ईश्वर को चढ़ाई गई एक बली मानते रहे हैं वे मानते हैं कि जीसस ने पूरी मानव जाति के पापों को ईश्वर से माफ कराने के लिए बलि दी थी

[अजय बंसल, मनुष्य ने ईश्वरों को बनाया, पेज 90 व 91]

विश्व के अन्य क्षेत्रों के अलावा मध्य भारत के छत्तीसगढ़ में इस तरह का स्थिति था.

साहेब शंकरलाल टोडर जी के अनुसार

धार्मिक स्थिति:- लोग विभिन्न प्रकार के देवताओं की पूजा करते थे। देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी। उनके अनुसार मनुष्य पर होने वाले रोगों का आक्रमण देवताओं के नाराज हो जाने पर होता था। अतः अनेक तंत्र मंत्रों एवं बली से देवताओं को मनाया जाता था।

देवी देवताओं में पशु बलि एवं नर बलि दी जाती थी।

मंदिर में देवता को खुश करने के लिए विभिन्न प्रकार के विभिन्न पशुओं पुरुषों (मानव) तथा अन्य जीवो की बलि चढ़ा कर हिंसा किए जा रहे थे। मुक पशुओं को मनुष्य अपने स्वार्थ के लिए बलि देकर हिंसा का दोष देवताओं पर मढ़ रहे थे।

(15) ... इसे किसी देवता के नाम से बलि देना वर्जित है

[साहेब शंकरलाल टोडर, सतनामी और सतनाम आंदोलन, पेज नंबर 51,68,183 व 242]

साहेब सर्वोत्तम स्वरूप के अनुसार

54. बलि प्रथा के विरुद्ध आंदोलन: बलि प्रथा एक पैशाचिक कर्म है। यह प्रथा धूर्त लोगों की चालबाजी से जन्मी है। बलि का अर्थ होता है निरीह प्राणियों का वध करना, हनन करना या मारना। जब बलपुर्वक ऐसा हनन करता है तो निश्चित ही अपने से निर्मल प्राणी का ही।

इसलिए सीधे साधे घोड़े गाय भेड़ बकरी आदि की बलि चढ़ाई जाती है आज तक आदमी कभी अपने से बलवान पशु शेर- चीता आदि की बलि किसी वेदी पर चढ़ाते नहीं देखा है और ना ही सुना है उक्त बलवान पशुओं की बलि चढ़ाने के पहले चाहने वाले ही बलि पर चढ़ जाएंगे अदेव निर्बल प्राणी को ही बलि की वेदी पर बलि चढ़ाई जाती है चाहे यज्ञ के नाम पर हो चाहे किसी देवी देवता के नाम पर इस तरह किसी देवी देवता के सामने मनौती मनाते हैं तो सिर्फ मूक पशुओं की।

यह बलि प्रथा कब से चली आ रही है। निश्चित तौर पर कोई कहा नहीं जा सकता। इतना तो जरूर उल्लेख मिलता है कि हमारे देश के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद माना जाता है। वहां बलि प्रथा का उल्लेख यज्ञ के रूप में पदे-पदे मिलता है जिस यज्ञ में विधि-विधान द्वारा पशु वध किया गया है। तत्पश्चात मनुस्मृति आदि ग्रंथों में छक्कर वर्णन किया गया है। जिसमें साफ लिखा है कि यज्ञ के लिए पशु वध किया जाता है वह हिंसा नहीं माना जाता क्योंकि पशुओं को ईश्वर ने यज्ञ के लिए ही पैदा किया है। यज्ञ में जिस किसी पशु का वध किया जाता है वह पशु स्वर्ग को जाता है।

यह बलि प्रथा वेदकालीन से यज्ञ के रूप में पैदा होकर काफी फुला फुला और वही आज किसी ना किसी रूप में फल-फूल रही है। पता नहीं ऐसा कोई मंत्र लिखकर करोड़ों अरबों निरीह प्राणियों का वध करवाया है। जो संत घासीदास साहेब के समय में भी देवी देवता के नाम पर बलि प्रथा का अधिक बोलबाला था। वह ऐसा युग था कि एक शिक्षा का मार्ग ब्राहमणि व्यवस्था के कारण विरुद्ध था तो दूसरी तरफ अंग्रेजी हुकूमत ने ब्राम्हणी धर्म की प्रतिबंधित शिक्षा को शुरू ना कर कर वसूलने के नाम से शोषण का उपाय किया था। समाज में वैचारिक बोध का नितांत अभाव था। इसलिए घरों घर देवी देवता की मान्यता की किसी भी प्रकार से जुड़ खांसी सर्दी बुखार को लेकर बैगा के पास जाकर झाड़-फूंक करवाते थे। इसी कारण प्रत्येक गांव में महामाई होती थी और आज भी है किंतु उस समय महामाई में हर वह जाकर मनौती मनाते थे। उस मनौती में प्राकृतिक हो या पारिवारिक निश्चित बकरी मुर्गी अधिक भेंट की मनौती मनाई जाती थी। वर्ष में कई बार उस मनौती को पूरा करने के लिए कई बार भेड़ बकरी मुर्गी की बलि चढ़ जाती थी।

देवी- देवता के नाम पर वर्ष में खासकर दो पर्व मनाया जाता था। वह था चैत्र शुक्ल पक्ष की नवरात्रि और कुंवार में दशहरा पक्ष की नवरात्रि जिसमें जवारे बोने के उपलक्ष में भेड़ बकरे मुर्गी आदि का सामूहिक वध होता था। इतने पर भी लोग संतोष नहीं होते थे इनके अलावा सैकड़ों जगह तीर्थ के रूप में मंदिर बने थे जहां हजारों की तादाद में उक्त निरीह प्राणियों की बलि चढ़ाई जाती थी। इस तरह 3 या 5 दिन का मेला लगा रहता था। ऐसे मेले लगने वाले तीर्थों की संख्या हजारों में थी...

उक्त मंदिरों में बलि प्रथा होती थी उस समय मंदिर तीर्थों के प्रमुख नाम है दंतेश्वरी के अलावा बड़े खल्लारी (भीमखोज) खल्लारी (रावण झीपन सुहेला) महामाया रतनपुर, महामाया डोण्डी, गौरैया, कुंवर अतरिया, तुरतुरिया, बेलपान, भोरमदेव, आरंग, डोंगरगढ़ की बमलेश्वरी, रनभौर (गातापार) आदि स्थानों में सैकड़ों जगह देवी मंदिरों में बलि प्रथा होती थी। जिसे गुरु घासीदास में अपनी आंखों से देखा था। जिसे स्वयं बंद भी करवाया था।

[साहेब सर्वोत्तम स्वरूप गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन पेज नंबर 242,243,246 व 247]

डॉ हीरालाल शुक्ला के अनुसार

...रायपुर व रतनपुर के महामाया मंदिर पशु बलि तथा नरबलि के लिए कुख्यात है। रतनपुर के महामाया मंदिर में 1831 ईसवी तक नरबलि प्रचलित थी। (#शिवदत्त_शास्त्री 4) रतनपुर के काल भैरव मंदिर को कृपालगिर महंत ने 1800 ईसवी में बनवाया था। (शिवदत्त शास्त्री तदेव) जेवरादेई के मेले में भटगांव जमीदारी में हजारों बकरों की बलि दी जाती थी। (#भटगांव_जमीदारी_का_इतिहास) आम जनता के पुरोहित गोण्डवंशी बैगा है जबकि जमीदारों के यहां ब्राह्मण ही कर्मकांड संपन्न कराते थे... छत्तीसगढ़ के अनेक स्थान विविध धर्मों के केंद्र रहे हैं रतनपुर, रायपुर, खरौद, धमतरी, राजीम, खल्लारी, आरंग, कुदुरमाल तथा दामाखेड़ा आदि ऐसे ही केंद्र थे। इन सब ने अपनी प्रासंगिकता खो दी थी। सच्ची धार्मिकता का नामोनिशान तक नहीं रह गया था। धर्म के ठेकेदार धर्म छोड़ चुके थे। मठ-मंदिर महाजनी के अड्डे बन गए थे। धर्म के नाम पर नरबलि जैसी कुप्रथा थी। पशु बलि तो आम बात थी। सूअर, भैसा, मेढ़ा तथा बकरे आदि की बलि दी जाती थी। तंत्र- मंत्र की साधना का विकृत रूप टोनहीं तथा बैगा आदि का गांव में आतंक था। धर्मस्थल व्यभिचार के अड्डे बन गए थे। मद्यमांस का सेवन समाज में आम बात थी। लोग बैल गाय को मारकर खा जाया करते थे। गायों को हलो में जोतते थे... [#शुक्ल 1993]
आध्यात्मिक जगत पूरी तरह पतीत हो गया था। बड़े-बड़े मठाधीश योग वैराग्य भूलकर भोग में लीन हो गए थे। हर मठ व्यवसाय का केंद्र बन गया था। दासिया और रखेलों की एक अलग जाति बन गई थी। स्वर्णेत्तर कुमारियो का सतीत्व खतरे में था।..
गरीब और अस्पृश्य जातियों सवर्णों से दूर होती गई। मरे हुए पशुओं के मांस पर ही उनका जीवन आधारित था। गुरु घासीदास ने छत्तीसगढ़ के संपूर्ण हिंदू समाज की इस स्थिति को देखा और उसके सुधार का बीड़ा उठाया...
[डॉ हीरालाल शुक्ला गुरु घसीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत पेज नंबर 33,34 व 35]

05. मूर्ति पूजा का निषेध :-

संसार में मूर्ति पूजा का पुराना इतिहास रहा है हमारा भारत देश इस मामले में अग्रणी है यहां करोड़ों देवी देवता की मान्यता है अक्सर तैंतीस करोड़ देवी देवताओं का उल्लेख किया जाता है. सनातनी हिंदू धर्म के करोड़ों देवी देवताओं के अलावा बौद्ध धर्म के गौतम बुध की मूर्ति की पूजा भारत सहित विभिन्न देशों में किया जाता है. अरब में इस्लाम के उदय के पूर्व सैकड़ों देवताओं की पूजा का प्रचलन था.

मुर्तियों के आगे लोगों द्वारा सुख और दुख के समय अपने धार्मिक मान्यता के अनुसार निवेदन, मांग और धन्यवाद ज्ञापित किया जाता है, जिसमें उस मूर्ति का कोई भूमिका नहीं होता. सतनामी आंदोलन के पूर्व छत्तीसगढ़ में व्यापक रूप से मूर्ति पूजा प्रचलन में था. छत्तीसगढ़ में मराठा राज्य स्थापित होने के कारण पहली बार राम का मूर्ति स्थापित किया गया तथा आदिवासियों का सांस्कृतिक रूप से हिंदू करण होने के कारण मूर्ति पूजा आमजन में काफी प्रचलित हो गया था एक तरफ शासक वर्ग द्वारा आम जनता के ऊपर काफी अन्याय अत्याचार और शोषण किया जा रहा था तो दूसरी तरफ विभिन्न देवी-देवताओं के पूजा-पाठ को बढ़ावा दिया जा रहा था जिससे लोग अपने दुखों से मुक्ति के लिए कोई क्रांति ना कर ईश्वर देवी देवता भक्ति में संलग्न रहे, और उन्हें अपना मुक्तिदाता मानते रहे, लेकिन जब सतनामी आंदोलन शुरू हुआ तो मूर्ति पूजा का भी विरोध काफी प्रभावशाली रूप से किया गया.

इस संबंध में विभिन्न लेखकों ने अपने पुस्तकों में इस प्रकार विवरण दिया है.

शंकर लाल टोडर के अनुसार लोग विभिन्न प्रकार के देवताओं की पूजा करते थे. देवताओं को प्रसन्न करने के लिए बलि दी जाती थी उनके अनुसार मनुष्यों पर होने वाले रोगों का आक्रमण देवताओं के नाराज हो जाने पर होता था. अतः अनेक तंत्र मंत्र एवं बली से देवताओं को मनाया जाता था.

(3) मूर्ति पूजा : - भारत में मूर्ति पूजा के नाम पर अनेक मठ मंदिरों का निर्माण कराया गया है । उस समय उन मठ - मंदिरों में | सभी प्रकार की लूट मची हुई थी । रूपये , सोना - चांदी , जवाहरों , नारियों की ईज्जत , धार्मिक आस्था , नैतिकता आदि की खुलम खुल्ला लूट किये जा रहे थे । मंदिर के देवता को खुश करने के लिये विभिन्न प्रकार से विभिन्न मूक पशुओं , पुरूषों (मानव) तथा अन्य जीवों की बलि चढ़ाकर हिंसा किये जा रहे थे । मूक पशुओं को मनुष्य अपने स्वार्थ के लिये बलि देकर हिंसा का दोष देवताओं पर मढ़ रहे थे । सतगुरू ने कहा कि मनुष्य न तो मंदिर बना सकता है और न ही उसमें देवता की प्रतिस्थापना कर सकता है । यह काम केवल धर्म का है । धर्म के कारण विश्व की उत्पत्ति होती है , उसका विकास एवं विनाश भी धर्म द्वारा ही होती है । विश्व का परिवर्तन धर्म के प्रभाव का परिणाम है । विश्व के सम्पूर्ण वस्तुओं का दो भाग निर्जीव तथा सजीव है । अपना अपना धर्म होता है । जीवित शरीर धर्म के द्वारा निर्मित मंदिर है इसमें निवास करने वाला चेतन देवता है । इस तरह हर मानव शरीर एक मंदिर है तथा उसमें स्थित आत्मा , उसमें निवास करने वाला देवता है । अपने शरीर रूपी मंदिर में अपनी आत्मा (देवता) का दर्शन मन के द्वारा होता है । कंकड़ पत्थर के मंदिर में मिट्टी पत्थर के देवता के दर्शन करने का प्रयास वास्तविक नहीं है । उसकी पूजा में हिंसा करना पाप है । गुरूजी के उपरोक्त विचार पंथी गीतों में दर्शाय गया है । यथा

मंदिरवा में का करे जाबो , अपन घट ही के देव ला मनाओ । मंदिर ...।

यहां कंकड़ - पत्थर के मंदिर में जाने के लिये मना किया जा रहा है।

दीयना जले हो , सतनाम के मंदिरवा में । टेक ..।

यहां शरीर रूपी मंदिर में आत्मा के प्रकाश को दर्शन करने की भावना परिलक्षित हो रही है।

(15) सतनामी संत किसी देवता के मंदिर में प्रवेश नहीं करेगा। सतनामी को मूर्ति पूजा करना वर्जित है।...

[सतनामी और सतनाम आंदोलन पेज नंबर 51,182,183 व 242]

साहेब सर्वोत्तम स्वरुप के अनुसार

57 . मूर्तिपूजा मूति दो प्रकार से होती है । एक चेतन मूर्ति अर्थात जिसमे चेतना शक्ति हो , ज्ञान शक्ति हो , प्रतिभा शक्ति हो । ऐसी मूर्ति को चेतन मूर्ति कहते है । मूर्ति कह देने से यह आभास होने लगता है कि पत्थर या मिट्टी से निर्मित । लेकिन ऐसी बात नहीं है जिनमें सामान्य लोगों की अपेक्षा विशेष गुण पाया जाता है उसे चेतन मूर्ति कहते है । सर्वसाधारण लोगों से

अधिक न्यायायिक दृष्टि से शक्ति सम्पन्न होता है उन्हें न्यायमूर्ति , ज्ञानमूर्ति तथा विद्वानमूर्ति कहा जाता है । चेतना शक्ति के संयुक्त को मूर्ति का विशेषण इसलिए लगाया जाता है वह अपने मन वचन कर्म से ही अटल सभी गुणों से संपन्न हों । उस चेतन मूर्ति ही कुछ दे सकती हैं इसलिए उनसे याचना करके ही मांगते हैं मांगने वाला सदैव छोटा होता हैं । सचमुच में जिसमें महानता होती है वे सदगुण ज्ञानों परिपूर्ण हैं उन्हीं मूर्ति की पूजा की जाती हैं ।

पूजा का अर्थ होता है सम्मान करना , आदर करना , I जिस किसी से कुछ लिया जाता है तो निश्चित ही उसे खुश करके ही । लेकिन डाटकर दबाव डालकर नहीं । देने वाले चाहे छोटे हो या बड़े आदर , सम्मान देकर ही लिया जाता है । उनसे बढ़ी विनम्रता पूर्वक अपनी याचना सुनाते हैं वह एक ही प्रकार की पूजा ही कहा जाता है । वहीं याचना बड़ों के लिए की जाती है तो वह पूजा कहलाती हैं और छोटों के लिए प्यार भरी शब्दों का प्रयोग किया जाता है । तभी देने वाला देता जो भी हो पूजा से हो अथवा परिस्थिति वह वश भय व डाट से देते हैं मजबूरी वश चाहे जिस किसी भी रूप में हो जिसमें चेतना शक्ति रहती है वहीं कुछ दे सकती है इसीलिए मूर्ति पूजा की जाती हैं । वहीं जिंदा मूर्ति की पूजा अपनी श्रद्धावश करते करते उसके मरनोंपरांत उसकी प्रतिमा बनाकर पूजा करके कुछ मांगना जारी रखा । जबकि इस चेतना विहिन मूर्ति कुछ नहीं दे सकती । फिर भी वह बड़े पैमाने पर जड़मूर्ति पूजा प्रचलित है ।

चेतना विहिन मूर्ति चाहे हीरे , सोने , संगमरमर , सामान्य पत्थर व मिट्टी की मूर्ति हो अथवा कागज की क्यो न हो । जड़ तो जड़ है । कहा जाता है कि बड़े - बड़े वकील , न्यायाधीश , डॉक्टर , इंजीनियर व पढ़े लिखे लोगों में यह मान्यता है कि उक्त जड़ मूर्ति जड़ हैं किन्तु पंडितों द्वारा प्राण प्रतिष्ठा करने के बाद उसमें चेतना शक्ति आ जाती हैं । लेकिन ऐसा कहना बिल्कुल निराधार हैं । यदि प्राण प्रतिष्ठा करने के बाद जड़मूर्ति में चेतना आ जाती तो मुसलमानों द्वारा अनेकों मंदिर तथा मूर्तियों केवल तोड़ी ही नहीं गई उसे अपने देश ले गये । वह मूर्तियां मांगना तो दूर की बात अपनी जगह से हीली भी नहीं और नहीं अपने रक्षा के लिए कोई गोहार लगायी ।

इसलिए गुरू घासीदास साहेब ने जड़मूर्ति पूजा का विरोध किया हैं । सदियों से जड़मूर्ति की पूजा प्रचलित थी उस मूर्तियों को अपने हाथ से खोद - खोदकर फेंके हैं । इस वर्तमान जन्म को कौन कहे सात जन्मों तक इस जड़ मूर्ति की पूजा अराधना करते रहे किन्तु कुछ फर्क पड़ने वाला नहीं हैं । कुछ लोगों की यह मान्यता है कि जैतखाम व गद्दी पूजा जड़ मूर्ति पूजा नहीं है ! लेकिन ऐसा कहना अतिश्रद्धावश है । वास्तविकता से कोई लेना देना नहीं है । जैतखाम (जयस्तंभ) या गद्दी की पूजा करना अपने आस्था के अनुरूप ठीक हैं लेकिन कोई विवेक सम्पन्न व्यक्ति के लिए उपयुक्त नहीं हैं । जैखखाम एक प्रतीक है सदगुण , सादाचार , व स्वच्छ जीवन जीने का । जैसे सड़क के किनारे में सांकेतिक चिन्ह होता है जिसमें लिखा रहता है कि अमुक गांव या शहर यहां से इतने कि.मी. है और उसके माध्यम से अपनी मंजिल तय कर लेते हैं लेकिन उस सांकेतिक चिन्ह (पत्थर) की पूजा करना या तोड़कर फेंक देना दोनो हद दर्जे की मूर्खता है ।

सत्य तो यह है कि चेतना शक्ति अर्थात जिंदा मूर्ति की पूजा से सब संभव है कि पूजारी को ज्ञान , धन , या यथोचित दे सकती है और जड़शक्ति (चेतना विहिन मूति) की हजारों प्राण प्रतिष्ठा कर ली जाय किन्तु कुछ दुख - सुख नहीं दे सकती इसलिए उस जड़मूर्ति की पूजा सर्वथा वर्जित हैं । जिन्दा ज्ञानी गुरू चरित्रवान महापुरूष , जिन्दा माता पिता व बड़े बुढ़ों की पूजा या आदर सम्मान करना चाहिए

बड़ा ही आश्चर्य लगता हैं हजारों वर्ष की मान्यता जड़मूर्ति (पत्थर , मिट्टी .) की प्रतिमा को गांव गांव व घरों घरों जाकर गुरू घासीदास ने इन तमाम जड़मूर्तियों को फेंक दिया । उक्त जड़मूर्ति के मानने वालों की भावना प्रबल होने के कारण भय का वातावरण व्याप्त था । कहीं ये जड़मूर्ति कूपित होकर हमको श्राप देकर मार सकती हैं । ऐसी मान्यता को बाबा जी ने ज्ञान देकर भय के भ्रम को भगाकर ज्ञान वान बनाया है । ऐसा बड़ा साहस का कदम बढ़ाना कोई युग पुरूष ही ऐसा कर सकता है ।

एक निष्पक्ष व स्वतंत्र विचारक #अभय_दुबे ने 18 दिसम्बर 2016 में वाट्सएप के माध्यम से गुरू घासीदास जी की प्रशंसा में मैसेज किया है वह दुर निम्न है -

गुरू घासीदास जी ने छत्तीसगढ़ में सतनामी सम्प्रदाय का निर्माण किया वे हिन्दुओं के देवी देवताओं को कचरे के ढेर में फेंक दिया । और उनके भेदभावपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को अस्वीकार कर दिया किन्तु आगे 100 साल बीतने के बाद सामाज के

संगठन संरचना और विचारधारा में परिवर्तन आ गया । और आज वही हिन्दु धर्म का अभिन्न अंग तथा सामाजिक राजनीतिक हिस्सा बन गया । 'अभय दुबे' 1998 आप सभी को ऐसे महापुरूष के जन्म दिन की बहुत - बहुत बधाई ।

[गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, पेज नंबर 253-255]

डॉ हीरालाल शुक्ला के अनुसार

रतनपुर के घनश्याम दास बैरागी तथा रायपुर के बैरागियों के मठ दूधाधारी का बहुत माहात्म्य था... 1774 ईस्वी में बीम्बाजी भोसले ने दूधाधारी मठ में रामचंद्र की मूर्ति स्थापित की थी [#शिवदत्त_शास्त्री]

विद्रोह के दरमियान यह एक निर्णायक कदम था कि घासीदास अपने अनुयायियों को रतनपुर ले गए थे वहां उनके अनुयायियों ने मूर्तियों को नीचे फेंक दिया और हिंदुओं के पवित्र माने जाने वाले इस स्थान पर भ्रष्ट कर दिया इस प्रकार के धर्मविप्लपमूलक आचरण का अगला कदम यह था कि घासीदास ने अपने अनुयायियों को यह आदेश दिया कि सभी लोग अपने-अपने घरों से मूर्तियों को बाहर फेंक दें और मूर्ति या मंदिर की उपासना से बचें. [रसेल तथा हीरालाल प्रथम खंड पेज 310]

[गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत पेज नंबर132- 133]

06. ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध :-

The Great SATNAMI REVOLUTION [1820AD] सतनामी क्रांति:-

मध्य भारत के छत्तीसगढ़ मे सतनामी आंदोलनकारियों ने सामंतवाद की सिर्फ चूलें ही नहीं हिलाई बल्कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी ताकतों को भी सशक्त चुनौती दिया क्योंकि 16 जून सन 1818 से ही ईस्ट इंडिया कंपनी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रुप से छत्तीसगढ़ मे अपना प्रभाव बढ़ा लिया था. लेकिन जब 1820-30 तक आंदोलन चला उसे रोकने मे न मराठे और न ही कंपनी सक्षम थी. इससे सतनामी आंदोलन के व्यापकता और क्षमता को समझा जा सकता है कि यह कितना प्रभावशाली था.
लेकिन अफसोस है कि इस पक्ष को डा. हीरालाल शुक्ला जी के अलावा और किसी लेखक ने न तो उजागर किया और न अपनी कलम चलाई.
डॉ हीरालाल शुक्ला के द्वारा इस संबंध मे लिखे हुए कुछ अंश इस प्रकार है:- ... "1817 में अंग्रजों ने पेशवा को पूना मे एक दूसरी संधि पर दस्तखत करने के लिए विवश कर दिया। छत्तीसगढ़ के सभी मामलों का संचालन में ब्रिटिश रेजिडेण्ट के जरिये करने का दायित्व ग्रहण किया । लेकिन नागपुर के अप्पासाहेब ने विद्रोह कर दिया । इस स्थिति में अंग्रेजों ने मराठों के खिलाफ 120 हजार सैनिकों के साथ अपना विजय - युद्ध शुरू किया । सीताबर्डी की इस लड़ाई में अप्पासाहेब पराजित हुए तथा 15 मार्च 1818 को गिरफ्तार कर लिए गए । भारत की विजय में मराठों का अधीनीकरण उपनिवेशवाद के प्रारंभ का प्रथम चरण था । अंग्रेजों ने अत्यधिक चालाकी बरतते हुए अप्पासाहेब के बाद अवयस्क रघोजी तृतीय को 18 जून 1818 को नागपुर की गद्दी पर बैठाया और अवयस्कता के बहाने इस अंचल के संरक्षक (1818-1830) बन बैठे ।
सूबेदारी व्यवस्था के स्थान पर बारह वर्षों तक कैप्टन एडमण्ड्स (जून 1818-1818) , मेजर एग्न्यू (1818-1826) , कैप्टेन हण्टर (1825) , कैप्टेन सण्डेस (1825-1828) , कैप्टेन विल्किसन तथा कैप्टेन क्राफोर्ड (1830) नामक बिट्रिश सेनाधिकारी छत्तीसगढ़ पर शासन करते रहे । कैप्टन एडमण्ड्स के काल तक मुख्यालय रतनपुर ही था , किन्तु एग्न्यू के साथ ही मुख्यालय रायपुर बना । मुख्यालय बदलने के पीछे निहितार्थ था क्योंकि इसमें रतनपुर के सात सौ वर्षों के राजनैतिक जीवन की समाप्ति के स्वर भी निहित थे ।
विजय के वर्षों में अंग्रेजों ने छत्तीसगढ़ के सामंतो के खजानों की लूट से प्राप्त अपार सम्पदा का स्वदेश को निर्यात किया । मिसाल के तौर पर एग्न्यू के सैनिकों ने डोंगरगढ़ पर चढ़ाई कर हीरे - जवाहरातों से अपनी जेबें भर ली थीं । सोनाखान के बिंझवार - नरेश को ही नहीं , उनकी पूरी जमींदारी को ही जलाकर राख कर दिया , जिसके वासिंदे गुरु घासीदास थे । जमींदारी को "मीक" नामक एक अंग्रेज ने खरीद लिया था । धमधा के गोंड राजा के पूरे परिवार का अन्त करवा दिया , जिससे कि वहां की जनता में त्राहि - त्राहि मच गयी (ग्राण्ट 1870) ।
1 मई 1828 ई.से ग्रेगोरियन कैलेण्डर को लागू करने के साथ ही एग्न्यू ने औपनिवेशिक संस्कृति के लिए छत्तीसगढ़ के दरवाजे खोल दिए (SNR.Vol.4.p.250 , dated 15.5.1828 Letter No.32) । ... अंग्रेज अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगे ।
बिटिश सत्ता के मजबूती से स्थापित हो जाने के बाद शोषण की दूसरी अवस्था शुरू हुई । औपनिवेशिक राजस्व का मुख्य स्रोत किसानों से प्राप्त भूमि - कर था । औपनिवेशिक सत्ता ने सूबेदारी व्यवस्था की खामियों को बताते हुए व करों के सरलीकरण की प्रक्रिया को दुहाई देते हुए अधिक से अधिक भूमिकर वसूल किया । सूबेदारी व्यवस्था में सभी राजस्व प्रणालियों में उतार - चढ़ाव आता

रहता था । औपनिवेशिक सरकार के कारण छत्तीसगढ़ के किसानों की स्थिति सूबेदारीकाल से भी बदतर हो गयी ।

इन समूची अव्यवस्थाओं से पीड़ित होकर घासीदास ने आध्यात्मिक क्रान्ति के मार्ग को चुना और 1820 ई.में आत्मबोध की स्थिति में वे छत्तीसगढ़ की जनता को जगाने लगे । यही कारण है कि घासीदास की क्रान्ति के उद्घोष का यह स्वर 1820 से 1830 के बीच अधिक मुखर हुआ है । इस तथ्य को चीशोल्म (1868) तया ग्राण्ट (1870) ने भी स्वीकार किया है । ....उन्होंने सामंतवाद और उपनिवेशवाद के खिलाफ एक बौद्धिक संघर्ष प्रारंभ किया था । उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक गुरु घासीदास का आन्दोलन इतना प्रचण्ड था कि 1830 ई.तक अंग्रेजों को यहाँ से हटना पड़ा तथा 6 जून 1830 से" ..."(1850) पर्यन्त देशी शासन की नींव पुनःडालनी पड़ी । इतिहासकार इस तथ्य को आरेखित नहीं कर सके कि गुरु घासीदास प्रारंभ से ही छत्तीसगढ़ की अस्मिता के लिए किस प्रकार संघर्ष करते रहे हैं । मराठों की सूबेदारी की अव्यवस्था से उद्विग्न होकर उन्होंने छत्तीसगढ़ की मुक्ति का क्या उपाय खोजा और 1820 ई. में सम्बोधि की स्थिति में अंग्रेजों के कठोर अनुशासन के काल में भी उन्होंने छत्तीसगढ़ को किस प्रकार जगाया और 1830 ई.के बाद अंग्रेजों ने पुनःदेशीशासन का मार्ग क्यों अपनाया ? पूरी एक शताब्दी तक गुरु घासीदास बाहरी तत्वों से संघर्ष करते रहे ।

देशीशासन (1830-1854) व्यवस्था को पुनः लौटाने में अंग्रेजों की चाहे जो भी नीति रही हो , उसमें घासीदास के मुक्ति - संग्राम के प्रभाव को भी नहीं भुलाया जा सकता । [9-10]

3.12 . राजनैतिक विपर्यास:- सतनामी - आन्दोलन की तीव्रता में छत्तीसगढ़ी कहावत (उलटा - पुलटा भय संसार , नाई के सिर ला मुड़े लोहार) के अनुसार संसार का उलट - पुलट कर देना ही एकमात्र भाव नहीं था । औपनिवेशिक छत्तीसगढ़ में ऐसे समुदाय भी थे , जो भूख और अपमान के कारण हिंसात्मक कृत्य करते थे , जिससे विपर्यास की स्थिति बन रही थी । 1857 ई के मुक्ति - संमाम के शहीद नारायणसिंह का यही अपराध था कि उसने 1856 ई . के अकाल में भूख से तड़फते छत्तीसगढ़ - वासियों के लिए सुविधाभोगी लोगों की अनाज से भरी कोठियाँ लुटवा दी थी (द फ्रीडम मूव्हमेण्टस इन मध्यप्रदेश , पृ .83) और बालकदास ने सदाव्रत खोल दिया था । सम्प्रभुता प्राप्त अंग्रेजों ने उक्त कृत्यों को अपराध कहा ।

दण्डव्यवस्था लागू करने वाले औपनिवेशिक अधिकारियों ने उन कृत्यों को अपराध की संज्ञा दी , जिनसे उसकी शक्ति का भौतिक आधार खिसक रहा था । इसीलिए उन्होंने बिंझवारों को " आततायी (जेन्किस 134) तथा सतनामियों को खतरनाक अपराधी घोषित किया । रसेल तथा हीरालाल (प्रथम खण्ड , पृ .315) के अनुसार " Generally the Satnamis are to blame.as pointed out by Mr. Blenkinshon who knows them well and many of them are dangerous criminals , restrained by their cowardice from worst outrages against person and property . इस प्रकार के अनेक कथनों को फलश्रुति यही है कि अंग्रेज समझ रहे थे कि बिंझवार तथा सतनामी दोनों ही उनके शक्ति के आधार को खिसकाने में लगे हुए थे । ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करें तो इन दोनों का ही लक्ष्य सामन्तवाद तथा साम्राज्यवाद को धूल चटाना था । इन दोनों का ही लक्ष्य स्वधर्म तथा स्वराज्य की स्थापना था । दोनों ही सोनाखान तथा उसके आसपास की जनता के कण्ठहार थे और दोनों के ही अनुयायियों की संख्या से अंग्रेज आतंकित थे । उस समय अकेले घासीदास के ही अनुयायियों की संख्या अढ़ाई लाख से ऊपर की थी । दोनों ने ही अपना आन्दोलन उस समय प्रारम्भ किया , जब छत्तीसगढ़ में अंग्रेजों के खूनी पंजे आ रहे थे । इन दोनों का ही आन्दोलन मुक्तिसंग्राम के वर्षों तक लगभग चालीस वर्षों तक चला । इन दोनों का नेतृत्व करने वाले योद्धाओं को या तो फांसी दे दी गयी या छलकपट से वध करवा दिया गया । दोनों के ही नेतृत्व में आम जनता ने शक्ति के प्रतीकों पर आक्रमण किया । दोनों

ही सुनियोजित विद्रोह थे , अन्यथा ये दीर्घकाल तक न चलते । सुनियोजित इसलिए भी कि लोगों ने सामन्तों की लूटपाट के कारण सामूहिक रूप से खेती करना छोड़ दिया था और गरीबी की स्थिति में जीवनयापन कर रहे थे ।" ....

... "गुरु घासीदास का आन्दोलन भी तीव्र था , पर" ... "अंग्रेजों ने घासीदास के प्रभाव के कारण सतनामी - विद्रोह को बलपूर्वक नहीं दबाया । घासीदास के अनुयायियों की संख्या लाखों में थी । शायद इसलिए भी अंग्रेजों का साहस नहीं हुआ।" ... [123-124]

[डॉ. हीरालाल शुक्ला, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत, भोपाल, 1995]

----

07. बैगा व टोनही प्रथा

[नारी विरोधी सामाजिक सांस्कृतिक कुरीतियों] का निषेध 1: The Great SATNAMI REVOLUTION [1820AD] सतनामी क्रांति:-

इस संबंध मे ब्रिटिश अधिकारियों (चीशोल्म,ग्राण्ट,ग्लसफर्ड, एग्न्यू, हीवेट आदि) के अलावा सिर्फ डॉ हीरालाल शुक्ला ने विस्तार से जानकारी दिया है. जिसका कुछ अंश इस प्रकार है:-

----

डॉ हीरालाल शुक्ला के अनुसार:- घासीदास कालीन छत्तीसगढ़ में " ... नारी" पर घोर अत्याचार हो रहा था। .... "टोनही" कहकर नारीयों का उत्पीड़न हो रहा था" ...। [128]

- कभी - कभी बैगा यह भी घोषित करता था कि गाँव में उक्त विपदा किसी टोनही के कारण आयी है । ऐसी स्थिति में एक गुप्त धार्मिक स्थान पर वह गाँव के वयस्क पुरुषों की मीटिंग बुलाता था । बैगा उनके बीच में बैठा रहता था और गांव वालों से यह जानना चाहता कि उक्त विपत्ति में गाँव की किस हतभागिनी का हाथ हो सकता है ? कौन औरत दोषी है ? अलग - अलग बैगाओं की टोनही के खोज की पद्धति अलग - अलग होती थी । ऐसी अनेक प्रभावकारी विधियाँ प्रचलित थीं , जिनके आधार पर संदिग्ध अपराधी को खोज निकालने का दावा किया जाता था।

(1) बैगा एक चिराग जलाता था और गाँव की प्रत्येक संदिग्ध स्त्री का नाम बारी - बारी से दुहराता जाता था । जिस स्त्री के नाम के उच्चारण के साथ चिराग की लौ कांपती थी , उसे अपराधिनी घोषित कर दिया जाता था (चीशोल्म 1868 , पैरा 132 : ग्राण्ट 1870 : 111) ।

(2) दूसरी विधि यह थी कि बैगा गाँव के वयस्क लोगों से उन बूढ़ी औरतों का विवरण देने के लिए कहता था , जिनमें ऐसे लक्षण हों । ऐसी औरतों की विस्तृत जानकारी के बाद वह अपनी ही सनक से गाँव की किसी एक औरत को अपराधिनी घोषित कर देता था (ग्राण्ट , तदेव) ।

(3) तीसरी विधि के अनुसार संदिग्ध व्यक्ति को हाथ फैलाने के लिए कहा जाता था । फिर उसके फैले हुए हाथों पर दो पत्तियाँ फेंक दी जाती थीं । यदि पत्तियां हाथ से गिर जाती , तो उसके अपराध की पुष्टि हो जाती थी । (ग्लसफर्ड 1862, 53-4) । बस्तर में " पर्णपरीक्षा " के बाद अपराधी को एक बोरे में सिल दिया जाता था । फिर कमर तक उसे पानी में डुबो दिया जाता था । यदि वह अपना सिर पानी के ऊपर उठा लेता , तो माना जाता कि वह अपराधी है ।

(4) चौथी विधि यह थी । किसी नदी के किनारे खास किस्म की लकड़ी का खम्भा गाड़ दिया जाता था । प्रत्येक संदिग्ध व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य होता था कि वह नदी में स्नान के बाद उस खंभे को स्पर्श करे । माना जाता था कि खंभे के छूने के साथ ही अपराधी व्यक्ति का हाथ सूज जाएगा ।किसी एक व्यक्ति विशेष पर संदेह करने के लिए पहले से कोई नियम निर्धारित नहीं होते थे । सभी अवस्थाओं और सभी लिंगों (यद्यपि अंत में स्त्रियाँ ही इसका शिकार होती के लोगों को चुना जाता था । बहुत ही सनकीपन और मनचाहे ढंग से अंत में किसी एक को दोषी मान लिया जाता था ।

(5) निरपराधिता के निर्णय की प्राचीन छत्तीसगढ़ी रीतिविशेष उन दिनों प्रचलित थी जिसे हम दिव्यपरीक्षा या अग्निपरीक्षा कह सकते हैं । इस दिव्यपरीक्षा से गुजरने के लिए परिवाद पक्ष का (फरियादी) व्यक्ति आने हाथों में पीपल की सात ' पत्तियां रूई के धागे से बाँध कर रख लेता था । उन सब को अच्छी तरह घी से चुपड़ लेता था । इसके बाद चार इच के लोहे के दहकते शलाकों से उनको स्पर्श करता था । यदि इस स्पर्श - क्रिया के दौरान उसके हाथ नहीं जलते थे , तो माना जाता था कि सत्य की स्थापना हो चुकी है और वह अपने प्रकार में क्षतिपूर्ति का अधिकारी होता था । यदि उसके हाथ जल जाते थे , तो माना जाता था । उसने मिथ्याभाषण किया है । तब उसे दण्डित किया जाता था (एग्न्यू 1820)।

अपराध के सिद्ध हो जाने पर किया जाने वाला व्यवहार बैगाओं के आविष्कारक मस्तिष्क अनुसार पृथक् - पृथकहोता था । कुछ दण्डात्मक विधान इस प्रकार प्रचलित थे।

(क) उसे इमली या अरण्ड की छड़ी से पीटा जा ता था । ऐसा माना जाता था कि दुष्टात्माओं भगाने की इनमें अमोघ शक्ति है (एलसफर्ड , 1862.53-4)

(ख) सामने के दो दाँतों को तोड़ दिया जाता था । बस्तर में दाँतों के उखाड़ने का अर्थ था टोनही मंत्रोच्चार न कर पाए (तदेव) ।

(ग) कुंद छुरे से शिर मुड़ा दिया जाता था । शिर मुड़ाने का अर्थ या बालों में निहित दुष्टश का विनाश (तदेव) ।

(घ) चूतड़ों को दाग दिया जाता था (चीशोल्म , 1868) ।

(ड) हल की फाल से बांध दिया जाता था (तदेव) ।

(च) चिलचिलाती धूप में नंगा करके लिटा दिया जाता था (हीवेट , 1869) ।

(छ) सड़े चमड़े का पानी पिलाया जाता था (तदेव) ।

कभी - कभी सन्दिग्ध व्यक्ति इन परीक्षणों से भी बच जाता था । ऐसी स्थिति में उसे गांव से बाहर निकाल दिया जाता था । आमतौर पर रास्ते में ही गाँव वाले उस की हत्या कर देते थे । हम ए.सी.ल्याल के आलेख वंश इन ए वे (उनकी पुस्तक ' विचक्राफ्ट इन सेंट्रल इंडिया पृ .54) का कतिपय अंश उद्धत करते हैं , जिससे कि उस युग की स्थिति की भयावहता का ज्ञान हो सकता है ।

" There is at this moment no logical method whatever demonstrating to a Malguzar of Raipur that witchcraft is nothing bu delusion and an imposition . Your only chance would be the proving t such things are contrary to experience : but unluckily tbay are by means contrary to every day experience in Raipur and the facts positively asserted and attested ; wherefore we are reduced to abandon logic altogether and to give out boldly that any one who kills a witch shall be most illogically hanged -a very practical and convincing live method of argument"

गांव में यदि कोई आकस्मिक मौत हो जाती , तो उसके पीछे किसी आत्मा का हाथ माना जाता था । अजीर्ण रोग का मतलब था कि किसी दुष्टात्मा की नजर लग गयी है । परिवार में जब कोई हादसा होता , तो माना जाता था कि उस घर में प्रेतात्मा का वास है और उस घर को हमेशा के लिए छोड़ दिया जाता था । इसका मतलब था पैतृक भूमि को तिलांजलि और पुराने सम्बन्धों से पूरी तरह विच्छेद । सच तो यह है कि छत्तीसगढ़ में टोनही ' को विविध मुसीबतों की जड़ माना जाता था । आस - पड़ोस में हरजाह ऐसी औरतें होती थीं , जो गुप्ततौर पर सम्मोहन - विधि का प्रयोग करती थीं , जिससे कि सम्बद्ध व्यक्ति की मृत्यु निश्चित मानी जाती थी । इन सबको प्रमाणित करने के लिए ऐसी कहानियों का आविष्कार कर लिया गया था , जिस पर लोग आसानी से विश्वास कर लें । [30-32]

[डॉ हीरालाल शुक्ला, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत, पृष्ठ 128,30,31 व 32]

गुरु घासीदास जी ने अपने वृद्धावस्था में भी लोगों को घर घर जाकर जादुटोना और अंधविश्वास के विरुद्ध लाखों लोगों को जागरूक किया.

[चिशोल्म 1868 के अनुसार]

----

08. सती प्रथा [नारी विरोधी सामाजिक सांस्कृतिक कुरीतियों] का निषेध 2:

The Great SATNAMI REVOLUTION [1820AD] सतनामी क्रांति :-

सती प्रथा पर विभिन्न लेखकों ने अपनी लेखनी चलाई है, जिसमें सतनामी आंदोलन के संदर्भ में साहेब सर्वोत्तम स्वरूप ने काफी विस्तार से विवरण दिया है, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है:-

----

साहेब सर्वोत्तम स्वरुप के अनुसार:- प्राचीन भारत में हजारों साल पहले मातृ सत्ताकवंश चलता था। माताओं की प्रधानता थी पिता कि नहीं। लेकिन पौरुष बल पुरुषों का उत्पन्न हुआ । तो शनैः - शनैः पुरूष वर्ग महिला वर्ग पर हावी होते गया। और उसी का बदला लेने के लिए महिलाओं पर अपना पौरूषत्व का अनेक प्रकार का शिकंजा कसता चला गया।

ब्राम्हणी व्यवस्था उक्त पौरुषबल की वकालत करते हुए लिखा है कि इस संबंध में तथाकथित धार्मिक ग्रंथ ' गरूड़ पुराण ' में सबसे पहले लिखा है कि जो स्त्री पति के मरने पर सती नही होती अर्थात पति के चिता के साथ जल कर नहीं मरती उसे यमराज नर्क में असहनीय पीड़ा देता है और जो अपने पति के साथ स्वेच्छा से जल मरती है यानी सती होती है उसे स्वर्ग में अनंत सुख की प्राप्ति होती है । तथा उसका पति पुनः मिल जाता है । इस गुरूड़ पुराण के मुताबिक मृतक की पत्नी को अनेक प्रकार के स्वर्ग नर्क के भय दिखाया जाता है । जिससे वह स्वयं जल मरने को मजबूर हो जाती है। यदि वह अपने पति की चिता में जलकर नहीं मरना चाहती तो उसे सब मिलकर जबरदस्ती उसी चिता के हवाले कर देते थे। यह है धार्मिक मान्यता की घोर अपराधिक भावना। [128-129]

कैसा दुर्भाग्य है कि पति भरी जवानी 25 , 30. 35,40 वर्ष की उम्र में ही क्यों न मर जाय । एक तरफ तो उस मृतक की जवान पत्नी 20. 25 , 30 वर्ष की उम्र में क्यों न हो उसे जबरदस्ती अपने पति के साथ जलकर मरने को उकसाया जाता है या फिर आजीवन वैधव्य जीवन जीने के लिए की विवश किया जाता है । तो दूसरी तरफ जवान पति को कौन कहे 50-60 वर्ष की उम्र में भी यदि उसकी पत्नी मर गई तो मृतिका का पति जब चाहे तब दूसरी पत्नी लाने का अधिकार प्राप्त है । इसलिए वह ले आता है , जिसके लिए कोई मनाहीं नहीं । कभी पति वियोग में मृतक की पत्नी मर गई तो वह स्वर्ग में जाती है कहकर उसके लिए कानून बनाया गया है और कानून पालन न करने पर उस विधवा को सामूहिक रूप में पकड़कर जिन्दा जलाया जाता था । उसी तरह नई नवेली दुल्हन का अचानक निधन हो गया तो पत्नी विक्षोह में मृतका का पति भी मर जाता है । उसके लिए स्वर्ग जाने वाले कोई कानून नहीं बना है और न ही एक भी विधुर को मृतिका के साथ पकड़कर जलाया गया है । कैसा पक्षपातपूर्ण नियम बनाया है पुरूषों के लिए । इतना ही नहीं बहुत से पुरूष पत्नी मरने के कुछ दिन बाद ठठके के साथ दूसरी पत्नी बाजे - गाजे के साथ बारात लेकर ले आते है । [130]

"खेद है! सदियों दरमियान स्त्रियों के साथ में ऐसा क्यों किया जाता था तथा आज भी ऐसा कुकृत्य किया जाता है जिसका 18वीं सदी के महामानव संत घासीदास साहेब में खुलकर विरोध किया। ..." [131]

[साहेब सर्वोत्तम स्वरूप, गुरु घासीदास और उनका सतनाम आंदोलन, पृ. 128-131]

डॉ हीरालाल शुक्ला के अनुसार:- गुरु घासीदास (जन्म 1756) राजा राममोहन राय के समकालीन अग्रज थे। उन्होंने हमारे समाज के नैतिक और आध्यात्मिक पुनर्जागरण के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया था। उस समय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियां अत्यधिक अस्त- व्यस्त थी। दूसरे शब्दों में पूरे देश में बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक अंधकार छा गया था। सती, टोनही का वध, नरबलि, अंधविश्वास तथा अनैतिक आचार- विचार पूरे समाज में छाए हुए थे। घासीदास ने ऐसी परंपराओं के खिलाफ पहली बार आवाज उठाई थी। ..."

[डॉ हीरालाल शुक्ला, गुरु घासीदास संघर्ष समन्वय और सिद्धांत, पृ. 164]

आलोक शुक्ला के अनुसार:- 1. सती प्रथा का उन्मूलन - अंग्रेजों ने 4 सितंबर 1829 को 7 वें नियम के द्वारा बंगाल प्रेसिडेंसी में सती प्रथा के उन्मूलन का आदेश प्रसारित कर दिया था. उन्होंने नागपुर के राजा से भी ऐसा ही आदेश जारी करने को कहा जो राजा ने सितंबर 1831 में किया.

[आलोक शुक्ला, छत्तीसगढ़ में मराठा राज]

इस प्रकार मध्य भारत मे नारी विरोधी सती प्रथा को सतनामी आंदोलन ने खत्म कर दिया.